रत्न सागर

(तुलसी साहब हाथरस वाले का)

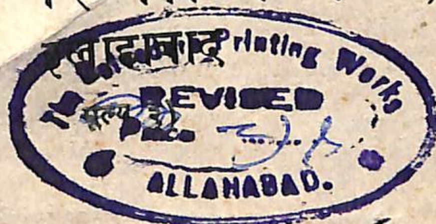
[जीवन चरित्र सहित]



मुद्रक व प्रकाशक

बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स,

इलाहाबाद





[...र १९६९]

संतबानी पुस्तक-माला पर दो शब्द

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जगत-प्रसिद्ध महात्माओं की बानी और उपदेश का जिनका लोप होता जाता है बचा लेने का है। जितनी बानियाँ हमने छापी हैं उनमें से विशेष तो पहिले कहीं छपी ही नहीं थीं और जो छपी भी थीं सो प्रायः ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या क्षेपक और त्रुटि से भरी हुई जिससे उन से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता था।

हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थ या फुटकल शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नकल कराके मँगवाये। भरसक तो पूरे ग्रन्थ छापे गये हैं और फुटकल शब्दों की हालत में सर्व साधारण के उपकारक पद चुन लिये हैं. प्रायः कोई पुस्तक बिना दो लिपियों का मुकाबिला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी गई हैं, और कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत फुट नोट में दे दिये गये हैं। जिन महात्मा की बानी है उनका जीवन चरित्र भी साथ ही में छापा गया है। और जिन [illegible] हैं उनके बृतान्त और कौतुक संक्षे[illegible]

दो अन्तिम पुस[illegible] १ (साखी) और भाग २ [illegible]ाय श्री पंडित सुधाकर द्वि[illegible]न भविष्यति"।

एक अनूठी और[illegible] "लोक परलोक हितकार[illegible]की श्रीमान महाराजा काशी[illegible]में संग्रह है; जो सोने के तो[illegible]जी

पाठक महाशये[illegible]की दृष्टि में आवें उन्हें ह[illegible]कर दिये जावें।

हिन्दी में और[illegible]ायें दी गई हैं। उन का न्य[illegible]खे पते से मुफ्त मँगाइए [illegible]

[illegible]य,

[illegible]-२

रत्नसागर

***

तुलसी साहब (हाथरस वाले) का

जीवन चरित्र सहित

जिसमें

कुल रचना का भेद, बेद और शास्त्रों का निरूपन,
युगों का प्रभाव, चार खानि और चौरासी
लक्ष योनी का हाल, कर्मों का हिसाब,
जीव का फँसाव उसके उबार की युक्ति,
संत शरन और सतसंग की महिमा,
भेषों की दशा इत्यादि, पूरी
भाँति से दिखाया है।



मुद्रक व प्रकाशक

बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद।

छठवीं बार]

[दाम २॥)



तुलसी साहिब का जीवन-चरित्र

तुलसी साहिब जिनको लोग साहब जी भी कहते थे जाति के ब्राह्मण बहुत अच्छे कुल के थे। बाल अवस्था ही में इनको ऐसा तीव्र वैराग और प्रचण्ड भक्ति प्राप्त हुई कि घर बार छोड़ कर भेष ले लिया और अलीगढ़ जिला के हाथरस शहर में आकर रहे और शरीर त्याग किया। इनको गुप्त हुए साठ बरस के अनुमान हुए और देहान्त के समय उनकी अवस्था साठ बरस के करीब थी, इस हिसाब से उनका जन्म विक्रमी संबत् १८४५ मुताबिक ईसवी सन् १७८८ और देहान्त विक्रमी संबत् १९०५ मुताबिक ईसवी सन् १८४८ में या दो एक बरस आगे पीछे ठहरता है। हाथरस में उनकी समाधि मौजूद है और बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं।

तुलसी साहब का कोई गुरू न था और इस बात के प्रमाण में यह कड़ी उनकी दिखलाई जाती है—

"मिलै कोइ संत फिरौं तेहि लारे"

इसमें कोई संदेह नहीं कि तुलसी साहब स्वयं-संत थे जिनको गुरू धारन करने की जरूरत न थी लेकिन मर्यादा के लिए चाहे किसी को नाम मात्र को गुरू बना लिया हो।

तुलसी साहब अक्सर हाथरस के बाहर एक कम्बल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये दूर दूर शहरों में चले जाया करते थे। जोगिया नाम के गाँव में जो हाथरस से एक मील पर है अपना सतसंग जारी किया और बहुतों को उपदेश दिया।

इनकी हालत अक्सर खिंचाव की रहा करती थी और ऐसे आवेश की दशा में धारा की तरह ऊँचे घाट की बानी उनके मुख से निकलती थी। जो कोई निकट-वर्ती सेवक उस समय पास रहा उसने जो सुना समझा लिख लिया नहीं तो वह बानी हाथ से निकल गई। इस प्रकार के अनेक शब्द उनकी शब्दावली में हैं।

तुलसी साहब के अनुयायी अब तक हजारों आदमी हिन्दुस्तान के शहरों में मौजूद हैं। उनकी प्रसिद्ध ग्रन्थ घट-रामायण, शब्दावली और रत्न सागर हैं। तुलसी साहब की घट-रामायण उनके भक्त के आचार्य देवी साहब छाप चुके हैं, शब्दावली और रत्नसागर पहिली बार बेलविडियर प्रेस इलाहाबाद में छपी है।

तुलसी साहब ने घट-रामायण में लिखा है कि आप ही गुसाईं तुलसीदास जी रामायण के ग्रन्थ-करता के चोले में (अनुमान ढाई सौ बरस पहले) थे और उन्होंने पहले घट-रामायण का ग्रन्थ रचा जिसमें घट का भेद दिया है और निर्गुण लखाया है परन्तु फिर ब्राह्मणों के झगड़ा करने पर उस ग्रंथ को उठा रक्खा और समय के अनुसार दूसरी रामायण सर्गुण के रूप में लिख डाली जो आजकल इतनी प्रचलित है।

तुलसी साहब ने अपनी बानी में कहीं कहीं वेद कतेब कुरान पुरान राम रहीम और प्रचलित मतों का खोल कर खंडन किया है जिससे लोग उन्हें निन्दक और द्रोही समझते हैं पर यह उनकी अनसमझता की बात है। तुलसी साहब के पदों के अर्थ पर ध्यान देने से स्पष्ट जान पड़ता है कि उन्होंने किसी मत को झूठा नहीं ठहराया है बरन जहाँ तक जिसकी गति है उसी को साफ तौर पर बतला दिया है। उनका अभिप्राय केवल यह है कि इष्ट सब से ऊँचे और समस्त पिंड और ब्रह्मांड के धनियों के धनी का बाँधना चाहिये और उसी की सेवा करनी चाहिये, निर्मल चैतन्य देश के नीचे के लोकों के धनियों की भक्ति करने से परिश्रम तो उतना ही पड़ेगा और लाभ पूरा न उठेगा, अर्थात् भक्त का काम अधूरा रह जायगा और वह आवागवन से न छूटेगा, देर सबेर जन्म मरण का चक्कर लगा रहेगा, क्योंकि यह लोक माया के घेरे में है चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म माया हो।

तुलसी साहब के बिषय में कहते हैं कि जब आप सतसंग कराते थे एक गड़ेरिया रामकिशुन नामो चुपके से नोचे आ बैठता था एक दिन आपको मालूम हो गया पूछा कि तुम क्यों आते हो जवाब मिला कि मुझको आपको बानी बड़ी प्यारी लगती है इस पर तुलसी साहब ने दया करके उसको एक पुस्तक अपनी दी और कहा कि पढ़ो उसने जवाब दिया कि मैं अनपढ़ हूँ लेकिन आपके फिर आज्ञा करने पर उसने जो पुस्तक की ओर देखा तो धड़ाके से पढ़ने लगा। इसी तरह प्रसिद्ध है कि आपके गुरुमुख (शिष्य) सूरस्वामी थे जो निपट अनपढ़ और जन्म के अंधे थे उनको भी एक दिन आज्ञा की कि ग्रंथ पढ़ो और उनके उज्र करने पर डाँटा तो सूरस्वामी की आँखों में जोति आगई और वह पढ़ने लगे।

एक बार आप घूमते हुए किसी स्थान पर पहुँचे। वहाँ के एक धनी ने आप का बहुत आदर सत्कार किया और भोजन सामने रख कर प्रार्थना की कि मुझे दया से एक पुत्र बख़्शा जाय तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया और यह कह कर चलते हुए कि लड़का अपने सर्गुन इष्ट से माँग सन्तों की दया तो यह है कि अगर उनके दास के औलाद मौजूद भी हो तो उसे उठा लें और अपने दास को निर्बंध कर दें।

यह रत्न-सागर ग्रंथ कुल रचना के भेद का एक अनमोल भण्डार है और जीव के उबार का सहज जतन बतलाता है। यह दुर्लभ ग्रंथ सचमुच "रत्नसागर" है, रत्नखानि नहीं कि जिसमें से बड़े परिश्रम के साथ खोद कर रत्न निकालना पड़ता है। इसमें तो जल की धारा की नाईं रत्न बह रहे हैं जिन्हें बड़भागी सहज में पा सकते हैं।

यह अनमोल ग्रन्थ "रत्नसागर" हमको कृपा करके लाला सुदर्शन सिंह सेठ साहब ने हस्त-लिखित गुटका के रूप में दिया। हम इस पुस्तक को खोजी और प्रेमी जनों के सामने छापा में रख कर सेठ साहब को अनेक धन्यवाद देते हैं जिन्हों ने इस अनमोल और दुर्लभ रत्न को परम पुरुष पूरन धनी स्वामी जी महाराज, राधास्वामी मत के प्रकाशक के पाठ की पुस्तकों में से निकाल कर हम को उसके छापने की इजाजत दी।

बेलविडियर प्रेस,

मई १६६६ इलाहाबाद।

॥ सूचीपत्र ॥

	पृष्ठ
तुलसी साहब का जीवन-चरित्र	(१-२)
रचना का मूल	२
मन की उत्पत्ति	३
वेद कैसे रचे गये	३
षट शास्त्र का वर्णन	३
अवतार का भेद	४
मूर्त्ति पूजन	५
कर्म धर्म, भूल भर्म	६
चौरासी लक्ष योनि	७
मन की चाल घात	९
आकाश की उत्पत्ति	१२
रचना का भेद	१३
कर्मों का हिसाब	१६
जन्म मरन की पीड़ा	२०
गुरु और सतसंग बिना छुटकारा नहीं हो सकता	२१
सतसंग से लाभ कितनों ही को क्यों नहीं होता	२३
सज्जन और असज्जन का भेद	२८
असज्जन अंडज खानि में उतर जाते हैं	३२
कर्म फल से खानों में उतार	३४
चार खानों का भेद	३५
अज्ञानता और भोग बिलास में आशक्ती का फल	३६
उष्मज जीव संत चरन से कुचल जायँ तो उद्धार हो जाता है	४१
असज्जन स्वरूप और लक्षण	४२
संत की अपार महिमा	४४
चलनी ज्ञान और सूप ज्ञान	४९
नर की स्थावर योनि कैसे मिलती है	४९
स्थावर से एक दम नर तन कैसे मिल सकता है और ऐसे मनुष्यों की बुद्धि की दशा	५३
महादेव पारबती की दशा	५४
स्थावर से नर तन में आये हुए जीवों का लक्षण और सुभाव	५५
नर से पशु योनि कैसे पाता है	५७
बेदोक्त करनी (पिंड दान इत्यादि) मनुष्य को तन की आसा धराती है	५७
पशु से नर चोला फिर कैसे मिलता है	५९
नर का पुनर्जन्म नर तन में क्योंकर होता है	६२
मधु मकुन्द सेठ के रूप में काल	६४
मेढक हंस सम्बाद	६७
चेतावनी और उपदेश	७०
कलियुग में जीव की दुर्दशा	७७
मरने के समय सुरत कैसे खिंचती है—संत अपनी शरनागत सुरत की कैसे रक्षा करते हैं	७८
जीव सत्य पुरुष की अंश	८२
कर्मकाया का संग	८२
काल के चरित्र	८३
जहाँ आसा तहाँ बासा	८४
नर्कों के दुख	८४
खानि योनि के कष्ट	८५
संत छाप के एक जीव ने नर्क में पड़ कर सब नर्कियों का उद्धार कराया	८६
संत की अनूठी दया	८७
भक्त के लक्षण	९०
अभक्त के लक्षण	९०
चेतावनी	९१
काल कराल	९३
सात्विकी और दीन रहनी के गुन	९४
भेष, पंडित, बाचक ज्ञानी, इत्यादि	९५
असली—तेजी घोड़े का दृष्टांत	९७
नकली	९९
साध के लच्छन	१०२
असाध के लच्छन	१०३
पंथ	१०४
साध शिरोमनि या संत	१०५
साध गति	१०५
गृहस्थी का कैसे निबेड़ा होय	१०६
पिंडुका पिंडुकी की कथा	१०७
सतसंग की महिमा	१०९
सतजुग का प्रभाव	१११
कलिजुग का प्रभाव	११२
सतसंग की महिमा	११४
संत देश	११६
कपट भेष—बाघ का दृष्टांत	११७
उरगाने और साँप की कथा	१२८
उरगाने की कथा का आशय	१२९
अविनाशी का निरूपन	१३३
जीव का मूल को भूल जाना और भोगों में आशक्त होना	१३६
शब्द भेद	१३७
मंजिलों का भेद	१४०
जीव की निर्बलता—मतों की भूल भुलैयाँ	१४०
संत शरन और सतसंग की महिमा	१४२
शास्त्रों का उलझेड़ा और उनको ठीक न समझने से खराबी	१४३
अवतार स्वरूपों की कथा का अंतरी अर्थ	१४६
सतगुरु शरन बिना निर्बार नहीं हो सकता	१४८
एक सिद्ध की कथा	१४९

❀:०:❀

रत्न सागर

(तुलसी साहब कृत)

—:o:—

॥ सोरठा ॥

हिरदे अरज कबूल स्वामी से कछु पूछिहौं ।
कहौ रचना निज मूल भूल भरम कब से भई ॥
जब नहिं अंड अकार सार सुरति रत कहँ हती ।
जब का कहौ बिचार पार प्रिये पद पुरुष का ॥

॥ छन्द ॥

प्रथम पदम[1] प्रनाम धुर गुर, आदि की रचना कहौ ॥
कस कुरम सेस अकार अँड खँड नौ, निरंजन कस रह्यौ ॥
सब चंद्र सूर जहूर पृथ्वी, कस भार सिर अपने लह्यौ ॥
सब तत्त अगिन अकास पवना, कौनि बिधि उतपत भयो ॥
जल बुंद पाँच पचीस बस, कस आप तन बंधन सह्यौ ॥
गुन गाँठ कस बैराट रचि, जिव जगत दृढ़ कैसे गह्यौ ॥
निराकार ब्रह्म अकार, कस घर भूल जग जिव होइ रह्यौ ॥
कस आप अपन बिसार पौ कोउ, नौ को नित बंधन सह्यौ ॥
तिरलोक सोक सिहारि[2] सब कोउ, उलटि घर कोउ ना गयौ ॥
सुधि बुधि बिसारी आदि अपनी, करम के बसि बंधि रह्यौ ॥
भटके भवन मन मूल कैसे, भूल कस बादै बह्यौ ॥
सब आदि अंत हवाल तुलसी, बरन हिरदे को कहौ ॥

---

(१) [चरन] कमल । (२) सम्हारना, पकड़ना ।

(रचना का मूल)

(तुलसीदास बाच)

॥ दोहा ॥

जतन रतन सागर सुनो, रचना को बिस्तार ।
बिस्व बिदित बैराट के, सब जग उदर[१] मँझार ॥
होय बैराट प्रलै सभी, रबि चंदा बिस्तार ।
अंड खंड ब्रह्मंड लौं, बिनसत बारम्बार ॥
आतम अंस अकास में, भास भवन परकास ।
सनन सनन स्वाँसा चलै, जहँ मन करत निवास ॥

॥ चौपाई ॥

सुन हिरदे कहै तुलसी दासा । आतम सब में ब्रह्म निवासा ॥
आतम नाद आदि से आई । सिंध बुन्द तन रह्यो समाई ॥
धरती पवन अगिन जल चारी । नीर बुन्द जग सृष्टि सँवारी ॥
ता में चेतन बास अनूपा । पंचम तत्त अकास सरूपा ॥
जड़ चेतन मन मूल बिसारा । अंतर गाँठ बहै नौ धारा ॥
नौ पनासिका मुख अरु काना । इंद्री गुदा गुनन में साना ॥
बदन बास तन तत्त रहाई । इंद्री रुचि सुख भोग सोहाई ॥
यह रस बस बहु फाँस फँसानी । उपजि मरै चौरासी खानी ॥

॥ दोहा ॥

उतपति परलै यों भई, गही न सतगुरु बाँह ।
संत चरन बिन बाद[२] यों, बहे भर्म के माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु आदि अकास अचीन्हा । बूझै साध हरष लौ लीना ॥
प्रथम पुरुष बिदेह बिन काया । जासे भई निरंजन माया ॥
माया पाँच तत्त उपजाया । यों रचि अस बैराट बनाया ॥
चेतन अंस आतमा सोई । भास अकास प्रकासिक जोई ॥

(१) पेट । (२) बृथा ।

याको नाम निरंजन कहिया । भूमी बास अकास समइया ॥
सहस कँवल दल अंदर बासा । दस नौ द्वार पार परकासा ॥
दस नौ वार धार चल आई । चेतन जड़ यों गाँठि बँधाई ॥
निराकार आकार समाया । इच्छा रूप भई यक माया ॥

(मन की उत्पत्ति)

॥ सोरठा ॥

निज तन बासी ब्रह्म, निराकार यह मन भयौ ।
इच्छा अंग बिलास, आस अधर की तजि रह्यौ ॥

॥ चौपाई ॥

इच्छा मन मिलि बिस्व बनाया । यों रचि कीन्ह तत्त से काया ॥
इंद्री सुर देवन कर बासा । निज नभ कँवल गुनन की आसा ॥
रज सत तम तन तीन बसाये । ब्रह्मा बिस्नु महेस कहाये ॥

(बेद कैसे रचे गये)

स्वासा संग बेद जो भइया । सुछम[1] बेद अस नाम कहइया ॥
अच्छर छर बैराटी बानी । भये बेद ब्रह्मा पहिचानी ॥
नाद भये पर बेद बनाया । जा पाछे जग को समझाया ॥
करम कांड करनी बिस्तारी । अरु उपासना कांड सँवारी ॥
ज्ञान कांड कीन्हा मन बोधा । नहिं कोइ संधि समझ कर सोधा ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान ध्यान जोगी जती, नहिं कोइ पावे भेद ।
खेद कर्म सुभ असुभ के, फल करनी कहे बेद ॥

॥ चौपाई ॥

बेद मथन बेदांती कीना । ब्रह्म ज्ञान वहि में से लीना ॥
बेद नाद से पीछे भइया । नेत नेत कह कर गोहरइया ॥

(षट शास्त्र का वर्णन)

षट सास्तर की सुनिये साखा । षट षट बाक बोल कर भाखा ॥

---

(१) सूक्ष्म ।

कर्म मिमांसा बरन बतावे। पातंजली जोग ठहरावे ॥
बरनि बिसेषिक समय सुनावे। नित्त अनित्त सांख समझावे ॥
न्याय नीति भाखे करतारा। षट करनी में जीव बिचारा ॥
सासतर नहीं सार समझावे। कस कस जीव अपनपौ पावे ॥
षट का कहा करे परमाना। जा में न कोई सार पिछाना ॥
जो कोइ इनकी साख सुनावे। मन हिरदे तुलसी नहि आवे ॥

॥ सोरठा ॥

यह षट करम बिकार, सार भेद संतन लयो ॥
सुरति सुन्न आधार, पार पदम पट भवन में ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह आदि कहानी। भानु किरन भूमी पर आनी ॥
परथम निरगुन गुन से न्यारा। सरगुन काज कीन्ह बिस्तारा ॥
सरगुन की माया मतवारी। भट्ठी भर्म चुवावनहारी ॥
मद पियाय के कीन्ह बेहाला। यों बाँधे जग में जम जाला ॥
काम क्रोध मद लोभ बिकारा। जानो यह उनका ब्योहारा ॥
औरः अनेक फंद उन डारा। उरझा जक्त पार नहिं वारा ॥
सब रचना बंधन बस राखी। कीन्हे बेद देन को साखी ॥
षट[1] कर बोध पुरान अठारा। पीछे ब्यास कीन्ह बिस्तारा ॥

॥ दोहा ॥

हरि कृत लीला ज्ञान, भानु किरन बंधन भई।
गही न गुरु की आन, जान जुगत ऐसे रही ॥

(अवतार का भेद)

॥ चौपाई ॥

सरगुन ब्रह्म भया औतारा। जिन जग माहिं निसाचर मारा ॥
जगत भक्ति कीन्हा ब्योहारा। यह पुरान की रीति बिचारा ॥
ब्यास ब्रह्म सरगुन अवतारी। कीन्हे उन पुरान अधिकारी ॥
ज्ञान बैराग जोग अधिकाई। यह बरनन उन भाख सुनाई ॥

---

(१) छः शास्त्र।

(मूर्ति पूजन)

सरगुन भक्ति कही संसारा। बूझै साध समझ निरवारा॥
काठ पषान जान जिन पूजा। अंदर में आतम नहि सूझा॥
ब्यास भागवत में यों भाखा। सूझै न जगत अंध की आँखा॥
पढ़ि पढ़ि के पंडित बौराने। ब्यास बचन को नहिं पहिचाने॥

॥ सोरठा ॥

अंदर आतम ज्ञान, ध्यान करन सूरत कही।
गई किरन रबि भानु, आप अपनपौ परखिया॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे इक संसय लाई। स्वामी भर्म उठा मन माहीं॥
ब्यास बचन कीन्हे परमाना। मन मोरे ने बोध न आना॥
रचि पुरान जो कीन्ह अठारा। करनी का कीन्हा बिस्तारा॥
पुरान पुरान कहा करतारा। बचन ब्यास यों भाखि सँवारा॥
करता तो सब एक बतावैं। यह अठरा[1] कस कस ठहरावैं॥
जो पुरान देख्यौं मैं जाई। करता वहि पुरान बतलाई॥
ऐसे अठरा निरख निहारा। कहे न्यारे न्यारे करतारा॥
सिव पुरान सिव रचना कीन्हा। बिस्नु पुरान बिस्नु रचि लीन्हा॥

॥ सोरठा ॥

दुरगा देख पुरान, सब रचना दुरगा करी।
करता आप बखान, यों पुरान सब सब कहै॥

॥ चौपाई ॥

मूल भागवत ब्यास बखाना। नारद का उपदेस समाना॥
इतनी कथन कही तुम सारी। मूल मर्म मति नाहि निहारी॥
तब आरंभ भागवत कीन्हा। नारद ने उपदेस जो दीन्हा॥
नारद गुरू ज्ञान के भइया। तुम ब्रह्म ब्यास कौन बिधि कहिया॥
नारद हरि के दास कहाये। उन कस कस उपदेस सुनाये॥

---

(१) अट्ठारह।

चौबिस[1] में सब सृष्टि बतावे । यह मम कहन दृष्टि नहिं आवे ॥
मैं सेवक मोरि बुद्धि मलीना । अस स्वामी से पूछन कीना ॥
ग्रन्थ भागवत के अस माहीं । परीछत को सुकदेव सुनाई ॥
सुकदेव पुत्र ब्यास के पाछे । कस लिखि बचन सुनाये साँचे ॥

॥ दोहा ॥

ब्यास कथन आगे कही, बचन राय सुकदेव ॥
ग्रन्थ लिखित सुकराय के, कस कहे उत्तर भेव ॥

(कर्म धर्म, मूल भर्म)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह अंतर बानी । जोगी आतम ज्ञान बखानी ॥
प्रानायाम पवन को साधा । इँगल पिंगल सुखमन औराधा ॥
घट में देखा सकल पसारा । सुकदेवराय ब्यास बिस्तारा ॥
ब्यास बचन अंदर में भाखा । इन पढ़ि बूझि जगत में राखा ॥
करें अरथ मन बुधि के मैले । जाने न ब्यास बचन को खेले ॥
ब्यास बचन ग्रन्थन में गाये । संतन की गति अगम सुनाये ॥
सो पंडित कहा जानें बिचारे । ज्ञान बुद्धि मन मान सँवारे ॥
उन कही और और इन बूझा । ऐसे इन की आँख न सूझा ॥

॥ दोहा ॥

सुनु हिरदे उत्तर बचन, समझि लखौ मन माहिं ।
ब्यास राय सुकदेव को, घट में कह्यौ बनाय ॥

॥ चौपाई ॥

ब्राह्मन भरम जक्त में डारा । यों जुग जुग भरमा संसारा ॥
सार तत्त को दीन्ह छिपाई । सुनु हिरदे अस अस भरमाई ॥
जीव अनादि काल से बूड़ा । संतन से कटे बंध अगूढ़ा ॥
जग उनको कोउ चीन्हत नाहीं । भरमत फिरे जीव जड़ताई ॥
तीरथ बरत नेम निरधारा । भाख्यो जीव कर्म करतारा ॥

---

(१) चौबीस औतार ।

भय भव भार अचार अनीता । कर्म काल सँग पाल्यौ प्रीता ॥
यह अस भाँति भुलायउ भाई । इच्छा अमृत बिषय पियाई ॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे अस बर्तमान, भर्म भूल जग जिव रह्यौ ।
मन करता बिस्तार, भ्रमत भ्रमत जुग जुग भयो ॥

(चौरासी लख जोनि)

॥ चौपाई ॥

कर्म प्रधान बुद्धि उपजाई । रह सुभ असुभ कर्म के माहीं ॥
जस जस कर्म कीन्ह अधिकारा । जो जस जोनि बंद में डारा ॥
जो जस बनिज किया बैपारी । दुख सुख हानि लाभ सँग चारी ॥
जो आसा बस बनिज बिचारा । बहा भवसिंध चौरासी धारा ॥
खान खान करनी से काया । फैली प्रगट सृस्टि में माया ॥
उपजे मरे धरे फिर देही । जो जस करनी के फल लेही ॥
लख चौरासी रह्यो अचेता । नर तन में बिरला कोइ चेता ॥
सतगुरु साख समझ कोइ बूझी । अंजन तिमर आँख जब सूझी ॥

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहि निस्तरे ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सभन की को गिने ॥

॥ छन्द ॥

सतगुरु बिना भव माहिं भटके, अटक नहिं गुरु की गही ॥
भृंगी भवन नहि कीट पावे, उलटि भृंगी ना भई ॥
गुरु सब्द में चित नाहिं दीन्हा, कीन करनी में रही ॥
जिन सब्द सोध सिहार[1] सोचे, अलल[2] अंड उलटे सही ॥
जिन जगत मोह मिलाप कीन्हा, अंत को छूटे नहीं ॥
कोइ लाख लाख उपाय करिके, भर्म में बादहिं बही ॥

(१) सम्हालना । (२) अललपच्छ या सारदूल जो आकाश में इतने ऊँचे पर अण्डा देता है कि वह पृथ्वी पर पहुँचने के पहले फट कर बच्चा उड़ जाता है ।

करि करि थके सब सोधि काया, मान मद ममता रही ॥
तुलसी दया गुरु दीन दिल, यों समझ हिरदे ने लई ॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सूरत ध्यान, ज्ञान उदय छिन भानु में ।
मंदिर मगन मिलाप, गगन गिरा गुंजत रही ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हिरदे बिनय बचन कर बोला । स्वामी मन बेअन्त अतोला ॥
छिन छिन मन यह तरँग उठावे । जैसे सिंध लहर लहरावे ॥
बिषधर[१] डसे लहर चढ़ि आवे । मन सुधि बुधि सब ज्ञान हिरावे ॥
यह अस समझ परा सब लेखा । स्वामी कहन दृष्टि से देखा ॥
जो कोइ कहे भाखि मन जीता । भूलि न मानूँ बात अनीता ॥
ज्ञानी गुनी कहे कोइ जोगी । नहिं मानूँ कहे लाख बियोगी ॥
नट की कला खेल मन केरी । डारै पकरि पाँव में बेरी ॥
ज्यों सुपने में देख तमासा । यों बाँधे मन झूँठी आसा ॥

॥ दोहा ॥

इंद्री के बस में रहे, गहे न सतगुरु टेक ।
भेष जतन करि करि मरें, धरि धरि जन्म अनेक ॥

॥ चौपाई ॥

संतन के बस बरन सुनावे । तौ हिरदे के मन में आवे ॥
सूरति डगर डोर पद माहीं । उनकी अगम रीति अरथाई ॥
उनका अंत संत कोइ पावे । अबिनासी गति अगम लखावे ॥
सुर नर मुनि गंधर्प और देवा । उनका अंत न पावे भेवा ॥
अगम अतीत तीत[२] से न्यारे । संतन की गति संत बिचारे ॥
तुम्हरी कृपा समझ अस आई । दयासिंधु चरनन सरनाई ॥
मैं मतिहीन दीन हूँ दासा । बार बार चरनन की आसा ॥
तुम दयाल मोहिं दृष्टि लखाई । जब मोरी बुधि ज्ञान में आई ॥

(१) साँप । (२) माया ।

हिरदे हरष बयान, स्वामी से बरनन करूँ ।
आगे को वर्तमान, बरन भिन्न मो को कहौ ॥

(मन की चाल घात)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

मन का कूत भूत से भारी । इच्छा संग घुमावनहारी ॥
जो सतगुरु की सरना आये । सुरति डोर चरनन पर लाये ॥
संत चरन का भेद बताऊँ । सुन हिरदे तोको दरसाऊँ ॥
स्याम सेत के घाट निसानी । सुन हिरदे भाखूँ सहदानी[१] ॥
संत चरन सूरत हुइ बासा । दृस्टि लाय नित करे निवासा ॥
जैसे महल चौक तिदुवारी । सैल करन को बैठक न्यारी ॥
जो नित नेम रखे वहि ठाँईं । मन इच्छा की नाहिं बसाई ॥
जल ओला गोला बँध गयऊ । घुल पानी वहि पानी भयऊ ॥

॥ दोहा ॥

जल ओला गोला भयो, फिर घुल पानी होय ।
संत चरन गुरु ध्यान से, मन घुल जावे सोय ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह मन दुखदाई । या बिधि जहर उतारे भाई ॥
और बात सँग हाथ न आवे । सतगुरु संत चरन लौ लावे ॥
करतब करि करि मुए अनेका । कोइ न पाया मन का ठेका ॥
मन थिर होय न एकौ बाता । जब पतियाय सुरति रँग राता ॥
रिखी मुनी सब खाय नचाये । जोई बचे जेहिं संत बचाये ॥
सिंगीरिषि[२] पारासर[३] जोगी । महादेव[४] भये ज्ञान बियोगी ॥

(१) पहिचान । (२) शृङ्गी ऋषि अकेले बन में रहते थे पवन का आहार करते थे और एक बार दरख्त पर ज़बान मारते थे । राजा दशरथ के औलाद नहीं होती थी, बशिष्ट जी जो कि उनके कुल के उपरोहित थे उन्होंने कहा कि बिधि पूर्वक जज्ञ क्रिया और होम होगा तब बेटा होने की उम्मीद हो सकती है और ऐसी क्रिया सिवाय शृङ्गी

करि करि थके सब सोधि काया, मान मद ममता रही ॥
तुलसी दया गुरु दीन दिल, यों समझ हिरदे ने लई ॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सूरत ध्यान, ज्ञान उदय छिन भानु में ।
मंदिर मगन मिलाप, गगन गिरा गुंजत रही ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हिरदे बिनय बचन कर बोला । स्वामी मन बेअन्त अतोला ॥
छिन छिन मन यह तरँग उठावे । जैसे सिंध लहर लहरावे ॥
बिषधर[1] डसे लहर चढ़ि आवे । मन सुधि बुधि सब ज्ञान हिरावे॥
यह अस समझ परा सब लेखा । स्वामी कहन दृष्टि से देखा ॥
जो कोइ कहे भाखि मन जीता । भूलि न मानूँ बात अनीता ॥
ज्ञानी गुनी कहे कोइ जोगी । नहिं मानूँ कहे लाख बियोगी ॥
नट की कला खेल मन केरी । डारै पकरि पाँव में बेरी ॥
ज्यों सुपने में देख तमासा । यों बाँधे मन झूँठी आसा ॥

॥ दोहा ॥

इंद्री के बस में रहे, गहे न सतगुरु टेक ।
भेष जतन करि करि मरें, धरि धरि जन्म अनेक ॥

॥ चौपाई ॥

संतन के बस बरन सुनावे । तौ हिरदे के मन में आवे ॥
सूरति डगर डोर पद माहीं । उनकी अगम रीति अरथाईं ॥
उनका अंत संत कोइ पावे । अबिनासी गति अगम लखावे॥
सुर नर मुनि गंधर्प और देवा । उनका अंत न पावे भेवा ॥
अगम अतीत तीत[2] से न्यारे । संतन की गति संत बिचारे ॥
तुम्हरी कृपा समझ अस आई । दयासिधु चरनन सरनाई ॥
मैं मतिहीन दीन हूँ दासा । बार बार चरनन की आसा ॥
तुम दयाल मोहिं दृष्टि लखाई । जब मोरी बुधि ज्ञान में आई ॥

(१) साँप । (२) माया ।

हिरदे हरष बयान, स्वामी से बरनन करूँ ।
आगे को बर्तमान, बरन भिन्न मो को कहौ ।।

(मन की चाल घात)

(तुलसीदास बाच)

।। चौपाई ।।

मन का कूत भूत से भारी । इच्छा संग घुमावनहारी ।।
जो सतगुरु की सरना आये । सुरति डोर चरनन पर लाये ।।
संत चरन का भेद बताऊँ । सुन हिरदे तोको दरसाऊँ ।।
स्याम सेत के घाट निसानी । सुन हिरदे भाखूँ सहदानी[1] ।।
संत चरन सूरत हुइ बासा । दृस्टि लाय नित करे निवासा ।।
जैसे महल चौक तिदुवारी । सैल करन को बैठक न्यारी ।।
जो नित नेम रखे वहि ठाँईं । मन इच्छा की नाहिं बसाई ।।
जल ओला गोला बँध गयऊ । घुल पानी वहि पानी भयऊ ।।

।। दोहा ।।

जल ओला गोला भयो, फिर घुल पानी होय ।
संत चरन गुरु ध्यान से, मन घुल जावे सोय ।।

।। चौपाई ।।

सुनु हिरदे यह मन दुखदाई । या बिधि जहर उतारे भाई ।।
और बात सँग हाथ न आवे । सतगुरु संत चरन लौ लावे ।।
करतब करि करि मुए अनेका । कोइ न पाया मन का ठेका ।।
मन थिर होय न एकौ बाता । जब पतियाय सुरति रँग राता ।।
रिखी मुनी सब खाय नचाये । जोई बचे जेहिं संत बचाये ।।
सिंगीरिषि[2] पारासर[3] जोगी । महादेव[4] भये ज्ञान बियोगी ।।

---

(१) पहिचान । (२) शृङ्गी ऋषि अकेले बन में रहते थे पवन का आहार करते थे और एक बार दरख्त पर ज़बान मारते थे । राजा दशरथ के औलाद नहीं होती थी, बशिष्ट जी जो कि उनके कुल के उपरोहित थे उन्होंने कहा कि बिधि पूर्वक जज्ञ क्रिया और होम होगा तब बेटा होने की उम्मीद हो सकती है और ऐसी क्रिया सिवाय शृङ्गी

मोहनी छले ध्यान में जाई । संकर की बुधि काम जगाइ ॥
पारासर पुत्री सँग भोगा । काम बान बस करन बियोगा ॥
वाके गरभ ब्यास सुत भइया । जिनकी मात मछोदरि कहिया ॥
सिंगी रिषि बन माँहि रहाई । मन उदबेग करा यों जाई ॥

॥ दोहा ॥

अन पानी की को कहे, लेत बृच्छ को चाट ।
माया प्रबल प्रचंड ने, आन बँधाई गाँठ ॥

॥ चौपाई ॥

और जगत की कहा सुनाऊँ । पसु पंछी नर नारि सुभाऊ ॥

ऋषि के और कोई नहीं करा सकता है। राजा दशरथ का हुक्म हुआ कि जो कोई शृंगी ऋषि को यहाँ लावेगा उसको हीरे जवाहिर का थाल भर कर मिलेगा। एक बेश्या ने कहा, मैं ले आती हूँ। वह वहाँ गई देखा कि ऋषिजी बड़ी समाधि में बैठे हैं, जिस दरख़्त पर कि ज़बान लगाते थे वहाँ एक उँगली गुड़ की लगादी। ऋषि जी ने जब ज़बान लगाई चाट लग गई पहिले एक दफ़ा ज़बान मारते थे, उस रोज़ दो दफ़ा मारी, दूसरे रोज़ तीन बार मारी, इसी तरह रस बढ़ता गया और ताक़त आने लगी। वह बेश्या जो छिप के बैठी थी उसने हलुवा पेश किया तब थोड़ा थोड़ा हलुवा खाने लगे। बदन जो दुबला था वह पुष्ट होने लगा ताक़त आई। बेश्या पास थी सब कारंवाई जारी हो गई। दो तीन लड़के हुए। किसी बहाने शृंगीजी से बेश्या ने कहा चलो राज दरबार में, यहाँ जंगल में लड़के भूखे मरते हैं। बिचारे उसके साथ हो लिये। दो लड़कों को दोनों कंधों पर उठाया और एक का हाथ पकड़ा, पीछे वह बेश्या चली। इस दशा में राजा दशरथ के दरबार में पहुँचे और वहाँ क्रिया होम वग़ैरह की की कराई। जब वहाँ किसी ने ताना मारा तब होश आया। एक दम लड़कों को वहीं पटक के भागे और जाना कि माया ने लूट लिया।

(३) पाराशर ऋषि ने मछोदरी से नाव में भोग किया (यह स्त्री उन्हीं के बीज से मछली के पेट से पैदा हुई थी जो बीज गंगा में नहाते वक्त ऋषि जी का किसी समय में गिर गया था और एक मछली ने खा लिया था) उस मछोदरी ने कहा अभी दिन है लोग देखते हैं तब ऋषि ने अपनी सिद्धि शक्ति से अँधेरा कर दिया आकाश में बादल आ गये। फिर स्त्री ने कहा मेरे बदन से मछली की बदबू आती है। ऋषि ने बदबू को बदल कर ख़ुशबू कर दिया। नतीजा इस संगम का यह हुआ कि ब्यास जी उस मछोदरी से पैदा हुए।

(४) शिवजी जिनके पारबती ऐसी सुन्दर स्त्री थी उनको छोड़ के मोहनी स्वरूप माया का देख कर उसके पीछे दौड़े और जोश में बीज बाहर गिर गया। (इसी बीज से पारा पैदा हुआ) जब देखा माया का चरित्र है तब अपने इष्टदेव को श्राप दिया कि जैसे हम स्त्री के पीछे दौड़े हैं वैसे ही तुम भी दौड़ोगे—इसी से त्रेताजुग में राम औतार हुआ, सीता के पीछे बन बन दौड़ना पड़ा।

सब को करे काम बेहाला। मन दारुन यह काल कराला ॥
और कुसल कोइ भाँति न पावे। संत चरन मन में दृढ़ लावे ॥
वे दयाल जब दया बिचारें। सुरति जहाज से पार उतारें ॥
और उपाय करे बहुतेरा। नहिं कोइ पावे मन का डेरा ॥
भरम चक्र चित चंचल घेरे। मारे बान आन मन फेरे ॥
बुधि मलीन सुधि एक न आवे। संका भाव अनेक उठावे ॥
नैन सुरख चित भंग रहाई। छावे आय अंग के माहीं ॥

॥ दोहा ॥

घटी बढ़ी कुछ नजर में, आवे न ज्ञान बिचार।
जब तरंग उसकी उठे, ज्यों सलिता[1] धधकार ॥

॥ चौपाई ॥

मोह अपर्बल जग में भारी। ज्ञान बान लै लौ से मारी ॥
क्रोध पलीत[2] प्रचंड कहाई। यह तो मारे छिमा के माहीं ॥
कुमति नारि मोह की पटरानी। पाखँड पुत्र बड़े अभिमानी ॥
कपट वजीर मान मतवारे। डिभी मंत्र जुझावन हारे ॥
इनके संग लड़न को जोई। बिन गुरु बाँह हटे नहिं कोई ॥
आसा त्रिस्ना पुत्री दोई। अंतर बान चलावें सोई ॥
आसा तजि निरआस कहावे। तब इनसे कोइ छूटन पावे ॥
यह उमराव फौज मन साथा। कहो क्योंकर आवे यह हाथा ॥
राय बिबेक साज दल आवे। तौ कदाचि उनसे हट जावे ॥
ज्ञान निसान घुरे घट माहीं। सत की कला रहे उर छाई ॥

॥ दोहा ॥

बान बिचारे जुद्ध को, मन मनसा रनभुम्म।
सब्द सिरोही[4] गुरुन की, ले फोड़ै घट कुम्भ ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

यह तो मन का मर्म बताया। हिरदे के मन में सब आया ॥

---

(१) नदी। (२) प्रेत। (३) शायद। (४) तलवार।

संत बिना कोइ पार न पाई । यह अस मोर समझ में आई ।।
अत आगे भाखो बिरतन्ता । अण्डा रचन कहो अर्थन्ता ।।
जो गति अगम संत अर्थाई । सो सब बरनि सुनाओ गाई ।।
प्रथम अकास कहाँ से आया । जा से अण्ड रचानी माया ।।
कहो कैसे महि पवन बनाया । आगे अंत कहाँ से आया ।।
जल औ अगिन कौनि बिधि कीना । या का भाखो आदि यकीना[१] ।।
को है पुरुष कीन यह काजा । हिरदे को कहो कहाँ बिराजा ।।

।। सोरठा ।।

यह सब बरन बयान, हिरदे के कारज कहो ।
जेहि बिधि भयो उपाय, पूरब[२] से उत्तर[३] गयो ।।

(आकाश की उत्पत्ति)

(तुलसीदास बाच)

।। चौपाई ।।

धुंधूकार रहे सुन माहीं । कई जुग ऐसे बीति सिराई ।।
उठि इक सुन्न माहि धधकारा । कड़का कुम्भ पुरुष अधिकारा ।।
सब्द बिदेह लोक बिन काया । जब नहिं हते निरंजन माया ।।
कुरम[४] सेस नहि अंड अकारा । जब का भाखि सुनाऊँ सारा ।।
गोलाकार रहे जल माहीं । कहूँ जेहि के आगे समझाई ।।
सब्द तेज से भयो अकासा । जस मेघा बादल में बासा ।।
घुमरे मेघ नजर में आवे । खुल मेघा वह वहीं बिलावे ।।
ऐसे सब्द अकास उपाई । ज्यों जलकजी[५] उपज हुई छाई[६] ।।

।। दोहा ।।

धुंधूकार सुन मैं हता, सब्द अंड अधिकार ।
सब रचना पीछे भई, बीज बृछ बिस्तार ।।

(हिरदे बाच)

।। चौपाई ।।

हे दयाल यह समझ सुनावो । हिरदे को कहि कर अरथावो ।।

(१) निश्चय । (२) सवाल । (३) जवाब । (४) कछुवा । (५) काई । (६) नाश हुई ।

हे स्वामी यह अकथ अदेखा । कहा जानूँ मैं यहि कर लेखा ॥
जुग जुग में रहुँ सरन तुम्हारे । आन मिले बड़ भाग हमारे ॥
करनी कौन कीन अधिकारी । कृपा चरन पर मैं बलिहारी ॥
आदि अकास सब्द से आया । ऐसे तुमने भाख सुनाया ॥
गोलाकार कुंभ की बाता । सो समझाय कहो बिख्याता ॥
याकी कहन समझ नहि आई । सो सतगुरु मोहि कहौ बुझाई ॥
यह कोइ बात भेद कहँ पावे । संत बिना कहो को दरसावे ।

॥ दोहा ॥

गोलाकार अकास का, भाख्यौ कुंभ बखान ।
तिन बयान बर्नन करो, हिरदे की मन जान ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी तेरे हृदे न आई । यह तो कहन कहन में नाहीं ॥
मन का अंत मिले नहिं भाई । संत अंत गति क्योंकर पाई ॥
यह तोरे कारन कर गाऊँ । जाका रूप रेख नहि ठाऊँ ॥
नाम न ठाम गाम नहिं काया । है अदेख की बात अकाया ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस न जाना । बेद पुरान नहीं पहिचाना ॥
दस अवतार भेद नहिं पावे । जग अँधरे को कौन सुनावे ॥
अब सुन याको भेद बखाना । संत चरन से महुँ पुनि जाना ॥
यह अतोल को तोल सुनाऊँ । जहँ नहिं बोल बचन अरथाऊँ॥

॥ दोहा ॥

अगम पुरुष बेअंत का, संत सुनावें बैन ।
कहन कहूँ समझाय के, हिरदे को सुख चैन ॥

(रचना का भेद)

॥ चौपाई ॥

जब नहिं सब्द ख्याल और स्वाँसा । जब का भेद कहूँ परकासा ॥
धुंध अनैन सब्द इक हूआ । ज्यों अगिनी अंदर से धूआँ ॥

धूआँ का डम्मर बँध गइया। अस अकास सब्द से भइया ॥
मधि अकास से स्वाँसा आई। धम्मन[१] ज्यों लोहार की नाई ॥
जैसे चाम उठै कर माहीं। निकसे पवन उसी की राही ॥
यों अकास से पवन पिछाना। सूरतवंत लखे धरि ध्याना ॥
यह सब सता[२] सुरत की जानी। पूरब से उत्तर सहदानी ॥
सूरति तन मन माहिं समानी। जड़ चेतन सृस्टी ले आनी ॥

॥ दोहा ॥

धुन्धकार सुन सब्द यह, सुरत किया बिस्तार।
यह अकास यों सुरत से, स्वाँसा निकर निहार ॥

॥ चौपाई ॥

षोड़स कला सुरति से भयऊ। तामें एक निरंजन कहेऊ ॥
सूरति नाम आत्मा सोई। सो अन्दर हेरा नहिं कोई ॥
कला एक से कुम्भ कहाया। एक कला गोला उपजाया ॥
गोलाकार भया इक अण्डा। सूरत मद्ध भास ब्रह्मंडा ॥
जड़ अकास जब चेतन भयऊ। चेतन तन में पवन चलयऊ ॥
पवन अकास मिले जब भाई। यह दोनों अगिनी उपजाई ॥
कुंभ प्रसेव[३] कीन्ह समझाऊँ। उपजा यों जल तत्त प्रभाऊ ॥
दूध तपे जस पड़े मलाई। यों पानी पर पृथवी छाई ॥

॥ दोहा ॥

गोलाकार अकार में, पाँचो तत्त समान।
सब रचना ऐसे भई, यों यह अंड बिधान ॥

॥ चौपाई ॥

सूरति आतम सूर्ज कहाई। सो प्रतिबिंब पड़ा घट माहीं ॥
जैसे घड़ा नीर से भरिया। सूरज का प्रतिबिंब जो परिया ॥
ऐसे आतम देह समाना। अन्दर में कोइ देख न जाना ॥
बाहर कीन्हा भास प्रकासा। सो करे मन इंद्री में बासा ॥

(१) धौंकना। (२) कुदरत। (३) पसीज।

नाद बिद कीन्हा बिस्तारा। ऐसे रचि संसार सँवारा ॥
चर अरु अचर चराचर खाना। गुन मन मिलि पसु पंछि नसाना॥
यों बिस्तार भई जग माया। बंधन भये जन्म जिव काया ॥
कोइ नहिं भेद उधर का पाया। बार बार भव में उरझाया ॥

॥ सोरठा ॥

सुनु हिरदे यह भेद, रचना की बिधि यों भई।
जुग जुग रही अचेत, सुरत बिसारी आदि की ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे अतंत अतोल की गति, खोल कर तोसे कही ॥
जो जो अगम गति संत ने, लखि देख कर भाखे सही ॥
कोइ हंस होय बिचारि बानी, बिमल पद पंकज गही ॥
दृढ़ सुरत डोर अपोढ़ पुर धुर, आदि गुरु चरनन रही ॥
कहुँ क्या कँवल दल पार प्रीतम, परसि पद पारस भई ॥
जहँ कोटि भानु प्रकास पद हद, हेरि जद जुगती लई ॥
जुग जुग अमरपुर बास बस अस, पुरुष ने बाचा दई ॥
तुलसी दयानिधि पुरुष बिन मैं, और को मानूँ नहीं ॥

॥ दोहा ॥

जगमग अन्दर में हिया, दिया न बाती तेल।
परम प्रकासिक पुरुष को, कहा बताऊँ खेल ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी मोहिं अगम सुनाई। आदि अनादि नजर में आई॥
बरनन एक और समझावो। कर्म कला मोहि भाखि सुनावो॥
कैसे जीव कर्म बस डारा। जाका कहो मोहि निरवारा ॥
कर्म की आदि अन्त दरसावो। जीव बँधा जस मोहि समझावो॥
जीव केहि घर बासा कीन्हा। कर्म कांड कैसे चित दीन्हा ॥
कहो किन कौन बँधाई आसा। कस कस जीव कर्म में फाँसा ॥

कर्म भूमि का कौन ठिकाना। क्योंकर यह यहि में लपटाना ॥
आदि अनादि भेद कस भूला। यह परबस होइ कर सहे सूला ॥

॥ सोरठा ॥

रचि रह्यौ कर्म करूर[1], मूर दियो बिसराय के।
भटक भटक भरमाय, जाय नहिं घर आपने ॥

(कर्मों का हिसाब)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

तब तुलसी बोले यहि भाँती। रचना के सँग कर्म सनाती[2] ॥
कर्म बिना जिव रहन न पावे। रचना में योंकर कर आवे ॥
परथम अंस पुरुष से आया। यह यहि संग लगाई माया ॥
माया पर-बस भया अधीना। यासे आप अपन नहिं चीन्हा ॥
सतगुरु का इन भेद न पाया। बार बार भव में भरमाया ॥
संतन की बानी नहिं चीन्हा। जा से जग में रहे अधीना ॥
अंस आदि से निरमल आया। ज्यौं धोये कपड़े की छाया ॥
निरमल रहि जग रहन न पावे। मल के संग सहज उरझावे ॥



॥ दोहा ॥

उजला आया वतन[3] से, जतन किया कर काल।
चाल भुलानो आपनी, यों भयो बंधन जाल ॥

॥ चौपाई ॥

धोया तो घर में से आया। बेद बाँधि कर्मन में लाया ॥
तप और जोग भोग बतलाया। यह कारन में जीव लगाया ॥
तप के फल राजेसुर भोगी। जोग ज्ञान मन गुन भयो रोगी ॥
और उपासना नेम निहारा। या बिधि से जिव बाजी हारा ॥
करनी ने जिव को बौराया। कर्म कांड करके उरझाया ॥
अब निकसन की गली न पावे। जन्म जन्म जिव भटका खावे ॥
सतसँग भाग मिलै कहुँ आई। तो मन साँच न आवे भाई ॥

(१) दुखदाई, दारुन। (२) सदा से। (३) घर।

जो कोइ कर्म कांड बतलावे। जाकी साँच समझ मन लावे ॥

॥ दोहा ॥

लाख बात करके कहे, नहिं माने गुरु बैन।
चैन कहो कहँ से मिले, समझे न सतसँग कहन ॥

॥ चौपाई ॥

रिषी मुनी तप कारन कीन्हा। यह सब ज्ञान कम को चीन्हा ॥
तप करके सब राजस पाये। राज भोग कर नरक सिधाये ॥
औ यह राम रहे अवतारा। कर्म कांड मन उनहु विचारा ॥
इन की यह रामायन माहीं। सुनु हिरदे तोहि साख सुनाई॥
राम सिया कह कानन[1] जोगू। कर्म प्रधान सत्त कहे लोगू ॥
अस बोले रघुबंस कुमारा[2]। बिध[3] का लिखा को मेटनहारा ॥
कर्म प्रधान बिस्व[4] रच राखा। जो जस किया सोई फल चाखा॥
ऐसे साख पुकारे बानी। पढ़ करके कोइ नहिं पहिचानी॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे कर्म बिषाद[5], बाद जन्म ऐसे गयो।
रह्यौ जुगन में साथ, हाथ पकरि आवे नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

कौन कौन से कर्म बताई। हिरदे जिव चौरासी माहीं ॥
अण्डज पिण्डज उष्मज खाना। सब पर भयो कर्म परधाना ॥
नर नारी की कौन चलाई। यह बँध रहे खबर नहि पाई ॥
यहि कर्मन ने बंधन कीन्हा। जल बिन रहे तड़प जस मीना[6] ॥
जल छूटे पर प्रान गँवाई। यह अस दसा रही उर छाई ॥
जो कोइ ज्ञान समझ बतलावे। सो हिरदै में नेक न लावे ॥
जेहि चरचा सुख की समझावे। निज देही में नींद सतावे ॥
आलस कर आसा ने मारा। कैसे होय जीव निरवारा ॥

(१) बन। (२) राम। (३) ब्रह्मा। (४) संसार। (५) दुखदाई। (६) मछली

॥ दोहा ॥

हिरदे सतसँग में रहे, ऊँघे सुन कर कान ।
हानि लाभ चीन्हा नहीं, कहा जाने परमान ॥

॥ चौपाई ॥

निद्रा आलस कर परभाऊ । यह पूरबले कर्म सुभाऊ ॥
जेहि बिधि अमलदार जग माहीं । उठि गया अमल उदासी छाई ॥
ऐसे पूरब जोग की रीती । अमल उठे कर्म करे अनीती ॥
आलस नींद सुभाव उठावा । और तरह कछु चले न दाँवा ॥
मन में नेक बसन नहिं पावे । जासे मन उदबेग उठावे ॥
और उपाय लगे नहिं कोई । तो यह बुद्धि अनेक बिगोई[1] ॥
मन को भर्म उचाट उठावे । मन छिन एक टिकन नहिं पावे ॥
ज्ञान बैराग कहै बहुतेरा । तौ मन नहिं आवै वहि केरा ॥

॥ दोहा ॥

कर्म भाव बिष ब्याध की, सुनै समझ सुख पाय ।
हाथ कधी आवे नहीं, क्योंकर संग समाय ॥

॥ चौपाई ॥

रस की लहर बसै मन साँचे । और लहर मन कधी न राचे ॥
अपनी बुधिमत ज्ञान बिचारे । सतसंग समझ कधी नहिं धारे ॥
सतसँग का रस पियन न पावे । परख प्रमान और बिधि लावे ॥
जिन कोइ भटक भाव दरसाया । नाँगे पाँव फिरे मन धाया ॥
यह बंधन का करे बिबेका । कस कस पावे मन का ठेका ॥
जो कोइ लाख कहे उपकारी । आवे न मन में बात करारी ॥
मन सतसँग से उचटा चावे । बुधि जद यह बिपरीत उठावे ॥
लाभ घटी बूझे नहिं भाई । यह सब पुरब जोग अधिकाई ॥

॥ दोहा ॥

सतसँग में मन ना बसे, फँसे कर्म के माहिं ।
खास बिषय बिस्वास यह, नहिं कोइ पियत अघाय ॥

---

(१) बहका देना ।

॥ चौपाई ॥

मन तन रस को पल पल धावे। इंद्री के रस को सुख चावे ॥
फीकी नीकि चिकन कड़ुवाई। षटरस भोजन माहि मिठाइ ॥
इंद्री भोजन भोग बिलासा। यह मन में उपजे बिस्वासा ॥
राग रंग नित सुने बिलासा। आवे न नींद रात भर पासा ॥
कोउ सतसंग भाग से पावे। तौ सईसाँझ नींद भर आवे ॥
भोजन करे पेट भर भाई। तौ घर नींद कौन के जाई ॥
यह रह सब मन जीव भुलाना। निस दिन रहे गहे नहिं काना ॥
भर्म उठे नहिं कैसे भाई। इंद्री मन मिलि मौज बसाई ॥

॥ दोहा ॥

इंद्री सुख रस रीति में, बिलसत जनम सिराय।
कहा कहूँ अज्ञान की, नेक न मन सरमाय ॥

॥ छन्द ॥

मन बिषम यह बिष बाद के बस, समझ कर थिर ना रहे ॥
रस भोग सोग सुनाय कहि कोइ, तुरत उदमद[1] में बहे ॥
कोइ नीक फीक बिचारि बंधन, यह समझ सुध ना लहे ॥
पल पल परख रस रीति सुख यह, दुख समझ निस दिन दहे ॥
सतगुरु दया निज बिमल बातें, समझ सुधि बुधि ना गहे ॥
कर्म कांड बेद बिचार बानी, समझ के साँची कहे ॥
नर को बदन बिस्वास करिके, बेद संग बादे बहे ॥
सतसंग बिना नहिं साँच पावे, कर्म के बंधन सहे ॥
हिरदे अपर्बल बात मन की, ठान जो अपनी ठहे ॥
तुलसी तरक[2] कोइ साध के संग, रंग लगे तब ना डहे ॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे मन की रीति, चित्त न सोचे आपने।
भव भर्मन की प्रीति, कोई कहन माने नहीं ॥

---

(१) मस्ती। (२) बहस मुबाहसा।

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

स्वामी यह सब बरनि सुनाई । आगे की कहो समझ बताई ॥
यह मन को बिषरस बस कीना । यासे भया भँवर मति हीना ॥
पोहप बास मन रहत समाई । जासे सुधि अपनी नहिं पाई ॥
बिषय बासना में मन राता । जासे पर्कार न आवे हाथा ॥
यह सब समझि समझि लख लीन्हा । आगे को कहो कैसे कीन्हा ॥
चार लाख चौरासी धारा । कौन कौन कस कर्म सिहारा ॥
खानि खानि का न्यारा भेदा । सो भिन भिन करि कहो निषेदा ॥
करनी कौन कर्म मन काया । कहो को को केहिं खानि समाया ॥

॥ दोहा ॥

कौन कौन करनी करी, फल तन पाया आय ।
जो जो जस बंधन बँधे, भिन भिन कहो अर्थाय ॥

(जन्म मरन की पीड़ा)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे मैं कहा बताऊँ । जीव बिपति तोको समझाऊँ ॥
चार खान जीवन की होई । जामें सुखी न देखा कोई ॥
जन्म मरन क्या कहूँ अलेखी । पूछै कही जाय नहि एकी ॥
जन्मत गर्भ माहिं का लेखा । जरते जठर[१] अगिन में देखा ॥
ज्यों कीड़े मोरी के माहीं । तड़पत जेठ तपन में भाई ॥
छटपट करे तपत रहे पानी । येही दसा गर्भ में जानी ॥
जन्मत जीव जबर दुख भारी । बाहर की कहूँ बिपति बिचारी ॥
जोनी संकट की सुनु भाई । रहे नौ मास नरक के माहीं ॥
उलटे गर्भ रहा लटकाना । औंधे मुख मल मुत्र समाना ॥

॥ सोरठा ॥

मुख उलटे लटका रहे, गर्भ बास के माहिं ।
कहा कहूँ दुख अंत को, जाने भोग समान ॥

(१) पेट ।

॥ चौपाई ॥

जन्मत बालपना दुखदाई । सुधिबुधि ज्ञान समझ नहिं पाई ॥
तरुन रहे तरुनी सँग भोगा । बृद्ध भये तब बाढ़े रोगा ॥
ऐसे यह तीनों पन बीता । नेक न जानी साहब रीता ॥
अब मरने का सुनो सँदेसा । प्रान गये पर किया अँदेसा ॥
अब क्या होवे बात बिचारे । नर बाजी जूवा में हारे ॥
घर बाहर से काढ़े डेरा । फिर नहिं आन किया नर फेरा ॥
कर्म जोग जोनी भरमाये । कर्म किया सोई फल पाये ॥
जब नहिं चेते मूढ़ गँवारा । बिगरे पै क्या करे बिचारा ॥

॥ दोहा ॥

अब समझे से का भयो, चिड़िया चुग गईं खेत ।
चेत किया नहि आप में, रहे कुटुम्ब के हेत ॥

(सतगुरु और सतसंग बिना छुटकारा नहीं हो सकता)

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोले यह बैना । दुख सुख भोग कर्म का कहना ॥
या बिधि जीव रहे जड़ताई । बिन सतसंग राह नहि पाई ॥
यह मोहिं समझ पड़ी सहदानी । स्वामी के कहने से जानी ॥
यह भवसिंधु पार नहिं पावें । सतगुरु मिलें तो पार लगावें ॥
बिन गुरु ज्ञान भया मति हीना । क्यों कर परे आप घर चीन्हा ॥
सतगुरु मिलें न सतसँग पावे । क्योंकर बात हाथ में आवे ॥
जग की रीति लगे मन मीठी । अंजन बिना आँख नहिं डीठी ॥
जब कोइ खोज करे मन लाई । संतन की संगत में पाई ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ सोरठा ॥

वे गुरु दीनदयाल, करें निहाल जो दीन होय ।
जग बस बंधन काल, भाल[1] लिखन मेटें सही ॥

---

(१) माथा ।

॥ चौपाई ॥

हे हिरदे अस हृदय बिचारे। जो तैं कही समझ सोइ धारे ॥
सन्त चरन में सूरति राखे। सतगुरु सब्द कहन अस भाखे ॥
जो सब्दन में करे बिबेका। तो सतगुरु का पावे ठेका ॥
छल तजि प्रीति जो करे हमेसा। तो वे काटें काल कलेसा ॥
अंतर साँच रहे मुख बैना। सतगुरु सन्त बचन क्या कहना ॥
या बिधि से सत सुरति लगावे। भव जल पार उतर के जावे ॥
कोई बिषाद[1] न रोके भाई। आद अरु अंत साध समझाई ॥
या बिधि समझ करे निरवारा। कोइ न उसका रोकनहारा ॥

॥ दोहा ॥

तन मन से साँचा रहे, गहे जो सतगुरु बाँहि।
काल कधी रोके नहीं, देवे राह बताइ ॥

॥ चौपाई ॥

जैसे नाव नदी के पारी। केवट[2] वा को देत उतारी ॥
जैसे जहाज समुन्दर माहीं। वार पार सहजै उतराई ॥
सतगुरु केवट मिलें दयाला। रोके न काल जबर जम जाला ॥
मन होय लीन दीनता पावे। मरजीवा[3] मोती ले आवे ॥
पैठे माहिं समुन्दर केरे। जो सतगुरु चरनन को हेरे ॥
जाने जोई सन्त गति प्रीती। हिरदय में नहिं रहे अनीती ॥
सुरति सिरोमन चरन लगावे। जब सन्तन की गति को पावे ॥
जैसे बनिज करे बैपारी। मूर रहे पर नफा बिचारी ॥

॥ सोरठा ॥

सौदागर का ज्ञान, माल दिसावर से भरे।
करे नफा से भाव, घटी जानि बेचे नहीं ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी अस अस कोइ कहिया। सतसंग कर हम कछू न पइया ॥

---

(१) कष्ट, बिघ्न। (२) मल्लाह। (३) समुद्र में डुबकी लगाकर मोती निकालने वाला।

सतसँग करत बहुत दिन बीते। देखा न नजर नैन से प्रीते ॥
यह सतसँग कस कस गोहरावा। वाके तो कछु हाथ न आवा ॥
याका भर्म भया मन माहीं। यह संसै स्वामी समझाई ॥
कैसे मन ने मन को रोका। याका समझ मिटावो धोखा ॥
सतसँग की महिमा कहैं भारी। कहो जो समझ परै अधिकारी ॥
कहो जो कहा कौन उन कीन्हा। सतसँग से उन लाभ न लीन्हा ॥
क्योंकर के सतसंग न पाया। कैसे वाको बोध न आया ॥

॥ दोहा ॥

कौन बात कीन्हा नहीं, कैसे न बोध समान।
ज्ञान रतन कहो कौन सा, सो न परा पहिचान ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे कहे गुरज्ञान स्वामी, कस न वोहि हिय में भयो ॥
अस कौन बात बिबेक तन मन, आप में खाली रह्यो ॥
कोइ समझ सोध न बोध कीन्हा, गुरु भटक मन से गयो ॥
कोइ भाँति बरन बिचार कारन, बूझ बिन लै ना लयो ॥
कहो कौन बिधि बिस्वास मन से, दिल बिकल ह्वै नहि सह्यो ॥
कोइ कहन में नहि कान दीन्हा, यह कहो कैसे भयो ॥
याको कहो बरतंत मोसे, संग में मन ना दियो ॥
तुलसी तरक[1] मन माहि अचरज, कौन बिधि मोटो कह्यो ॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे कहत सुनाय, स्वामी यह मो से कहो।
कर्मन के बर्त्तमान, की कोइ और उपाय से ॥

(सतसंग से लाभ कितनों ही को क्यों नहीं होता)

(तुलसीदास वाच)

॥ चौपाई ॥

तुलसीदास कहे सुनु भाई। तोको बचन कहूँ समझाई ॥
जीव अनादि काल से आया। जन्म जन्म कर्म कीट[2] लगाया ॥

---

(१) संसय। (२) मैल की काई।

लोहा को काई खा जावे। कीड़ा लगे काठ घुनि जावे ॥
जैसे असल सिरोही[१] होई। लगे मोरचे माहि बिगोई ॥
जस ओला घुल पानी होई। अस जिव आप अपनपौ खोई ॥
कर्म कराल बड़ा अधिकारी। सूरत पर मन करे सवारी ॥
बिष बंधन मन करे बिहारा। गाँठ बाँध चेतन जड़ डारा ॥
मन मलीन सुधि बुद्धि हिरानी। कहु वह सतसंग को का जानी ॥

॥ सोरठा ॥

जैसे अपढ़ अज्ञान जो, पढ़े जो पोथी जाय।
अच्छर की सुधि बुधि नहीं, नाहि उस अरथ प्रभाव ॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे उन सतसंगत कीन्हा। भोजन लोभ माहिं मन दीन्हा ॥
जब लग स्वाद मिला मन माहीं। तब लग संग करा उन जाई ॥
राह रकाना एक न बूझे। कहो कैसे आँखी से सूझे ॥
भरे पेट जो खाय अघाई। सोवे सईसाँझ से जाई ॥
बैठे गाल फटाका मारे। मनमौजी को नाहि सम्हारे ॥
जन्म जन्म का उरझा सूता[२]। को सुरझाय सके मजबूता ॥
करनी करे आप की सोई। की सतगुरु के सरनै होई ॥

॥ दोहा ॥

की अपनी करनी करे, की गुरु सरन उबार।
दोनों में कोइ एक नहिं, नाहक फिरत लबार।

॥ चौपाई ॥

डाँवाँडोल बोल मन केरा। सो क्या पावे जीव निबेरा ॥
संत चरन पर प्रीति बढ़ावे। तो उन से उपकारी पावे ॥
दीन देखि के करें निबेरा। जो कोइ साँचे मन से हेरा ॥
संतन को चीन्हब बड़ि बाता। छल बल दाँव चलावें हाथा ॥
जो करनी में देखन चावे। भटकत जन्म नजर नहिं आवे ॥
उनके रीति रकाने भारी। तैं का जाने चीन्हि अनारी ॥

(१) तलवार। (२) सूत।

बेद नेत उनको गोहरावे। अवतारी कोइ भेद न पावे ॥
तिरदेवा नहि पावें अंता। परखि न परें लखन में संता ॥

॥ दोहा ॥

कोइ सतसँग करके लखे, सज्जन सुमन बिचार।
दीन गरीबी रहनि जो, मन से बैठे हार ॥

॥ चौपाई ॥

हे हिरदय मन के जो ऐसे। सो लख पावें संत सदेसे[1] ॥
रहनी और करनी में नाहीं। जो खोजे सो रहे भुलाई ॥
कधी इक करें अज्ञानी काजा। कधी सभा में ज्ञान बिराजा ॥
कधी इक बड़े ज्ञान के राजा। कधी मूरख अज्ञान समाजा ॥
कहो को उनको परखे भाई। पारख परख लखन में नाहीं ॥
यह क्या परखे जीव बिचारा। सतसंग के बिन सार असारा ॥
जोई कदाचित भाग से पावे। तो अपने मन साँच न लावे ॥
कई तकरीरें कहन उठावे। या बिधि उनका भेद न पावे ॥

॥ दोहा ॥

जो उपाय छल से करे, मिले न उनका भेद।
फेर जुगन जुग में सहे, उन गति अगम अभेद ॥

॥ चौपाई ॥

जो कोइ कहे संत को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा ॥
कोइ कोइ सज्जन हैं बड़ भागी। जिन की सुरति चरन में लागी ॥
वे परखें गति अगम सनेही। जो मिथ्या जग जानें देही ॥
नर पसुवत जग माहिं घनेरे। सो का जानें जम के चेरे ॥
हिरदे मोसे कही न जाई। यह जिव कुटिल बड़ा अन्याई ॥
जो याकी करनी दरसाऊँ। तो जग कागज स्याही न पाऊँ ॥
इन अपनी सुधि कबहुँ न पाई। आद अरु अंत रह्यो भमाई ॥
खोटे जन्म कर्म कर बीता। ऐसइ रहा हाथ से रीता ॥

(१) जल्द।

॥ दोहा ॥

यह अज्ञानी जीव की, क्यों कर करूँ बखान ।
अपनी बुद्धि बिकार की, करे न मन पहिचान ॥

॥ चौपाई ॥

इतनी नजर कहाँ से आवे । बाहर भीतर को कस पावे ॥
सतगुरु को कहो कहा पिछाने । कहो यह बुद्धि कहाँ से आने ॥
जग धंधे में जन्म बिताया । साँझ पड़े घर अपने आया ॥
भोजन करिके खाट बिछाई । पौढ़े पाँव पसारे जाई ॥
ऐसे जन्म गयो सब बीती । कस आवे सतसंग की रीती ॥
जक्त भेष दोउ आहिं अनारी । यह बँधे माया मोह की जारी[1] ॥
सुपने सतसंग कबहुँ न पावे । इनको कहो कौन समझावे ॥
हिरदे कौन जिकर मन लागे । इनको देख दूर मन भागे ॥

॥ दोहा ॥

यह जग जीव अनादि से, भटकत फिरे निकाम ।
काम बान[2] मन में बसे, जुग जुग से भरमान ॥

॥ चौपाई ॥

कइ मति के बहु भाँति बिकारा । लोक न बने परलोक बिगारा ॥
कोई केहि भाँति पड़ा जम घेरा । अरु दूजे यह चले अनेरा ॥
कौन भाँति कहूँ या की रीती । अपने बस नहि चूके अनीती ॥
सतसंग में कैसा होइ जावे । कैसी बिरह बात समझावे ॥
ज्यों ठग ठगन करे ठगियाई । मारे माल लेन के ताँई ॥
ज्यों बैपारी माल खरीदे । सौदा लोभ माहि मन बीधे ॥
रोकड़ बाँधि कमर के माहीं । चौकस करिके माल बिसाही[3] ॥
उथल पथल कर कीन्हा सौदा । अपनी नजर देख मन बोधा ॥

॥ दोहा ॥

या बिधि सतसंग में करे, रोकड़ कम्मर बाँध ।
चाँद सुरज जहँ लगि रहे, कभी न आवे हाथ ॥

(१) जाल । (२) एक लिपि में "बान" है दूसरी में "बाम", बान = तीर; बाम = स्त्री ।
(३) मोल ले ।

॥ चौपाई ॥

माँगे माल संत से आँधे। जैसे कम्मर रोकड़ बाँधे ॥
खिजमत नहिं कछु खरचे दामा। सहज संत का माल निकामा ॥
सभी महात्मा कठिन बतावें। यह जाने अस माँगे आवे ॥
यों बुधिहीन करे लड़िकाई। यह तो मिले मेहर के माहीं ॥
ज्यों जल भरा सिंधु के माहीं। तोला चाहे तोल में नाहीं ॥
गगरी जो अपनो भरि लावे। या बिधि पानी प्यास बुझावे ॥
अस संतन मति तुले न भाई। है अतोल तोलन में नाहीं ॥
जो गगरी जल जीव बिचारे। संत कृपा से कारज सारे ॥

॥ दोहा ॥

सिंधु अथाह न थाह कहिं, मिले न वाका अंत।
भटक भटक भव पचि मरे, को गति पावे संत ॥

॥ छन्द ॥

सिंधु अगम अथाह जल को, अकल कर तोले तुही ॥
ऐसे अगम गति संत की, आगे नहीं ऐसी हुई ॥
कोइ कहे परख पिछान मैं, सोइ गिरि पड़े माहीं भुंई[1] ॥
खोटे करम मन भोग करि, जस वस्त्र को सीवे सुई ॥
जो संत से आधीन होय, जब कर्म की आसा मुई ॥
जिव काज कारज की कहूँ, नर जाय जो ममता धुई ॥
भवसिधु से केहि भाँति कढ़ जिव, जक्त यह औंधी कुई ॥
तुलसी तरक मन तोल के, जब छूटि हैं गाँठैं गुई[2] ॥

॥ दोहा ॥

संतन से माँगे नहीं, घट घट जाननहार।
जीव दया हिरदय बसे, नाहक करत बिचार ॥

॥ चौपाई ॥

मन सूरत चरनन में लागी। वे हैं हिरदे संत अनुरागी ॥
उनका बार बंक[3] नहिं होवे। वे नित पाँव पसारे सोवें ॥

(१) धरती। (२) गूढ़। (३) टेढ़ा।

जैसे साँड़ दगे जग माहीं । उनको जग कोइ पूछे नाहीं ॥
मोहर छाप कागज पर लागी । रुके न जीव सुरत बड़ भागी ॥
जो कोइ संत चरन के दागी । जिनसे काल दूर होइ भागी ॥
जम की जाल निकट नहिँ आवे । मारग छाँड़ि अलग होइ जावे ॥
साँचे मन आवे बिस्वासा । संत चरन नहिं दूजी आसा ॥
जिनके भर्म निकट नहिं आवे । एक आस बिस्वास समावे ॥

॥ दोहा ॥

संतन की साखी सभी, देत जुगन जुग ज्ञान ।
सतसंग करिके बूझि ले, करत सभी परमान ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

कह हिरदे यह सच कर भाखी । कहे अस सुनी सबन की साखी ॥
अब वह कथा कहो बिस्तारी । चार खानि में जीव दुखारी ॥
जस जस कर्म जीव ने कीन्हा । सुन कर आवे हृदय अकीना ॥
कर्म जक्त में बहु परकारा । जस जिनकी करनी बिस्तारा ॥
जो जिन कर्म किये हैं जैसे । सो तिन ने फल पाये कैसे ॥
यह भवसिन्धु बड़ा दुखदाई । कौन कर्म केहि खान समाई ॥
इच्छा सँग दुख देवनहारी । रहे नाहिँ ढिंग ज्ञान करारी ॥
तन धर के दुख सहे अनेका । जो जस कहो खानि का ठेका ॥

॥ दोहा ॥

कौन कर्म किन ने किये, करनी के परभाय ।
जौन जीव जेहिं खानि में, पड़े कहो समझाय ॥

(सज्जन और असज्जन का भेद)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे भवसिंधु अपारा । याका नहीं वार अरु पारा ॥
ज्यों दरियाव माहिं है सोई । मोती संख सीप सब होई ॥
ऐसे जग जिव को पहिचानो । मोती संख सीप सम जानो ॥

कोइ मरजीवा मोती पावे। कोइ कोइ हाथ संख चढ़ि जावे ॥
कोइ सनीप सीप ही पावा। अस अस न्यारे जीव प्रभावा ॥
मोती की कीमत है भारी। संख सीप की कहूँ बिचारी ॥
सुभ के कर्म संख सम जाना। जोई असुभ हैं सीप समाना ॥
नहिं नर जग में एक समाना। मोती संख सीप यों जाना ॥

॥ दोहा ॥

मोती सज्जन को कहें, संख असज्जन जान।
ज्यों कनिष्ट[1] सीपी भई, ऐसे परख पिछान ॥

॥ चौपाई ॥

सज्जन की सूरत मतवारी। उनकी रीति जक्त से न्यारी ॥
सज्जन सतसंग संत सुहावे। सूरत उनकी अंत न जावे ॥
जो कोइ जीव जक्त में ऐसा। कधी न पावे कर्म कलेसा ॥
संतन की बानी अस बोले। जो कोइ जीव समझ में तोले ॥
सुनो असज्जन का ब्योहारा। करनी बुद्धि कहूँ अनुसारा ॥
साँच झूँठ नहिं परखे बैना। अपनी बुद्धि समझ का कहना ॥
उलटै बात बचन नहिं बूझे। सो अज्ञान ज्ञान नहिं सूझे ॥
अपनी बुद्धि अधिक करि जाने। सतसँग का बिस्वास न माने ॥

॥ दोहा ॥

कुटिल बचन बोले सदा, कधी न माने हार।
धार बहो बहु फिरत है, कर्म कुमति अनुसार ॥

॥ चौपाई ॥

और असज्जन का सुनु बैना। फूहर बचन बाक मुख कहना ॥
कहे अनीती अधम अनारी। गुन के हीन जक्त संसारी ॥
जो कहुँ जाति पाँति में जावे। अड़बंगी इक बात चलावे ॥
बचन उलटि के अपनी ठाने। हलुकी गरू[2] नाहि पहिचाने ॥
सभा माहिं मसकरी[3] चलावे। ज्यों मद पिये खुमारी आवे ॥
चाल चले छाती उचकाये। टेढ़ी पाग छोर लटकाये ॥

---

(१) छोटी। (२) भारी। (३) ठठोली।

एड़ी बेड़ी कहे बनाई। कुल मरजाद ऊँच ठहराई ॥
घाटि[१] करन को चूकत नाहीं। घट में घाटि बसे मन माहीं ॥

॥ दोहा ॥

कूड़ कुमति में गरक[२] है, फरक न माने एक।
जो कोइ अक्किल की कहे, उरझै उलट परेत ॥

॥ चौपाई ॥

अच्छी सुन कूकर सम भूँके। खोटी कहत नेक नहिं चूके ॥
अच्छी में लज्जा ले आवे। छोड़े लाज बुरी को धावे ॥
जो कहुँ जाय बजारे भाई। हाट हाट पर हाँसी लाई ॥
फिरते फिरे चिकनिया जैसा। सेखी बड़ी गाँठि नहिं पैसा ॥
जो पैसा होय हिर्स बढ़ावे। मैली बात समझ मन लावे ॥
नहिं नगीच नीके के जावै। फीक फरेब[३] करन को चाहै ॥
माल पराये को दिल दौड़े। घूमे कुफर बात में बौरे ॥
ऐसे मलिछ बिषय के मूरा। बाँधे सदा धूर के पूरा ॥

(असज्जन अंडज खानि में उतर जाते हैं)

॥ दोहा ॥

अपकीरति जग में बढ़ी, सब सिर डारे धूर।
लाज कधी आवे नहीं, साँची कहे न मूर ॥

॥ चौपाई ॥

यह तो ऊपर जग ब्योहारा। मन अंदर का सुनो बिचारा ॥
मन इच्छा संग साथ चलावे। इच्छा मन संग तरंग उठावे ॥
जहँ मन लगे तहाँ तन जावे। मन मन मिले मिलाप कहावे ॥
जैसे नदी लहर की लहरी। जैसी बास चले मन केरी ॥
यह जग जीव लहर में माता। दुनिया नाम पड़ो यहि भाँता ॥
मन की कला अनेकन होई। मन इच्छा सँग बाद बिगोई ॥
मदिरा को कलवार बनावे। पीवे दाम देइ दुख पावे ॥

(१) घात। (२) डूबा हुआ। (३) दग़ा।

मन भट्ठी कलवार चढ़ावे। कलवारिन पी पीव छकावे ॥

॥ सोरठा ॥

मन है मुकर[१] कलार, कलवारिन इच्छा भई।
बिष रस बिषम बिकार, रात दिवस करते रहें ॥

॥ चौपाई ॥

जाग्रत में मन लागे जोई। पहुँचे सुपने में तहँ सोई ॥
छल बल करे रीति दरसावे। जाग्रत सो सुपने में पावे ॥
लहर उठे जो मन के माहीं। सो तदरूप देख दरसाई ॥
या मन मन इच्छा जिव बाँधे। कर्म करूर ताहि में फाँदे ॥
जैसे माल भरे बैपारी। जाय दिसंतर बेचे भारी ॥
ऐसे कर्म खरीदी लेखा। चौरासी के भोग अलेखा ॥
जो हिसाब कागज में होई। धर्मराय भुगतावे सोई ॥
नरक स्वर्ग दोउ बने करूरा। या में से कोइ बाचे पूरा ॥

॥ सोरठा ॥

अंड असज्जन रीति, जन्म जन्म जोनी पड़े।
अंडज में बिसराम, तीन[२] तत्त तन मन धरे ॥

॥ छन्द ॥

अब यह असज्जन रीति की, करनी करम गति यों भई।
मर के अँडज की खानि में, तन पाय के भुगते सही ॥
अप[३] काय बाई[४] तेज[५] तत बस, बास में काया कही ॥
सागर कलप के बाद[६] फिर फिर, जोनि में आवे वही ॥
कोइ कर्म के अनुसार करि, चर[७] खान में उतपति रही ॥
जुग जुग वतन[८] करिके रहे, नर की जोनी पावे नहीं ॥
जस बाट में कोइ बृच्छ फल, पड़ पड़ पके गिर के भुइं ॥
कोइ संत आय उठाय मुख, जब खाय नर जोनी भई ॥

---

(१) आईना, दर्पण। (२) अंडज जीव (पक्षियों) में तीन ही तत्व अर्थात तत्व-सम्बन्धी गुण होते हैं—[३]जल, [४]वायु और [५]अग्नि। (६) पीछे। (७) चार। (८) घर मान कर।

दइ[1] जोग से संजोग अस कोइ, आनि के बरते सही ॥
करनी करे नहिं पार पावे, संत की किरपा भई ॥

॥ सोरठा ॥

अस जड़ खानि सुभाव, निकसन का रस्ता नहीं ।
संत सँवारें आय, नर तन पावे मुक्ति मन ॥

॥ चौपाई ॥

अंडज से जो नर तन पावे । जाका भाखूँ सकल सुभावे ॥
खानि लच्छ मैं कहूँ समझाई । अंडज से नर देहीं पाई ॥
खानि जुगन जुग रहे अनेका । उनका लख पहिचान परेखा[2] ॥
मन की बसन बसे परतीता । वह उपजावे वैसी रीता ॥
जस जस रहे खानि रस माहीं । जस जस बुधि उपजावे भाई ॥
जैसी रहनि चाल नित चाले । लच्छ अलच्छ दोई प्रतिपाले ॥
जोइ रस में मन रहा निदाना । सोइ रस दरसे परख पिछाना ॥
रहनि रहे सब भासक रीति । सो भासक होइ परसे प्रीती ॥

॥ सोरठा ॥

अंडज खानि सुभाव, धरा जो नर तन आइ के,
लच्छन के बर्तमान, जोनि जन्म जुग जुग रहे ॥

॥ चौपाई ॥

आलस नींद नैन भरि सोवे । काम क्रोध दालिद्दर होवे ॥
चंचल चोर चुगल चतुराई । माया मोह ममत अधिकाई ॥
गुरु के चरन चित्त नहिं लावे । संतन की संगति नहि भावे ॥
भूत पिसाच रु पूजे देवा । देवी दरस और नहि सेवा ॥
तीरथ बरत बहुत मन लावे । ठाकुर प्रीति भाव चित चावे ॥
बेद पुरान कहन बहु भावे । सिवलिंग परसि पूजि लौ लावे ॥
बन बाहर घर आगि लगावे । रोवत माहिं हँसी उठि आवे ॥
छिन सुर तान अलाप सुनावे । दुख सुख पीर पराई न आवे ॥
कोइ कछु कहे गुस्सा भरि आवे । जिद्द पड़े मारन को धावे ॥

(१) दैव । (२) परख ।

॥ सोरठा ॥

या बिधि उद्मद ज्ञान, अज्ञानी भव भटक में ।
अटक न माने काहु, पूरब करनी करम फल ॥

॥ चौपाई ॥

कोइ कोइ को देखत कछु देवे । मन मलीन मैला करि लेवे ॥
मन में झुरे आप दुख पावे । अंदर माहिं बहुत पछितावे ॥
जिकर बिबाद बहुत मन भावे । ज्ञान ध्यान सुधि बुधि बिसरावे ॥
सुरख नैन रतनारी[1] रेखें[2] । भौं टेढ़ी दिरगन से देखे ।
मुख में लार बहे दिन राती । बहु बिधि हेत जुवारी साथी ॥
नीचा आप ऊँच मन राखे । मन का मोट मधुरता भाखे ॥
हम समान दूसर नहि कोई । या बिधि बसे हिये में सोई ॥
कुबरी पीठ पेट हलुकाई । सुने कोइ बात तुरत कहे जाई ॥
बाँकी धरन मूड़ टेढ़ाई । यह लच्छन बहु भाँति रहाई ॥

॥ सोरठा ॥

यहि बिधि बरनन बाक, भाख कहूँ प्रकृती सभी ।
कभी न चूके भाव, जो लच्छन यहि में कहे ॥

॥ चौपाई ॥

जामें कुटुँब काज यों धावे । ज्यों कूकर पिल्ले को चावे ॥
लेत ऐंड़ाई तन को तोड़े । सभा बैठि के मूछ मरोड़े ॥
मीठे भोजन अधिक सुहाई । फल फलहार खाय बहु भाई ॥
जाने न जाति आपनी छोटी । बातें करे बड़न से मोटी ॥
चाल चले तीतर की नाईं । काग सुभाव रहे मन माहीं ॥
लंपट बात करे बरियाई[3] । अंदर सदा कपट रहे छाई ॥
अंडज जो जोइ खान कहावे । तत्तहीन भव भटका खावे ॥
कोइ संजोग पड़े अस भाई । नर की देंहि धरे तब आई ॥

॥ दोहा ॥

तीन[4] तत्त अंडज कह्यो, अघादिक सब कोय ।
नर अंडज से जो भया, यह सुभाव प्रति होय ॥

---

(१) लाल । (२) आँख के डोरे । (३) शेखी । (४) देखो नोट पृष्ठ ३२ में ।

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे इक संसय लाई। स्वामी मोहिं कहो समझाई।
अंडज से जिन नर तन पाऊ। जाका भाखो सकल सुभाऊ॥
तीन तत्त अंडज में कहिया। उन नर तन कहो कैसे पइया॥
नर तन में तत पाँच बतावे। तीन तत्त कस नर तन पावे॥
यह संसय मोरि दूर बहावो। हिरदे चित संसय समझावो॥
तत्त हीन यह क्यों कर भयऊ। सो स्वामी मोहि बरनि सुनयऊ॥
याकी बिधी कहो बरतंता। कस कस भाख सुनाये संता॥
यह अचरज मोरे मन आवा। सो स्वामी पूछूँ परभावा॥

॥ सोरठा ॥

नर तन धर ततहीन कस, कस अंडज में जाय।
सो मोहि बरन सुनाइये, जोनि खानि परभाव॥

(कर्मफल से खानों में उतार)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह बात ब्रतंता। सूरतवंत कहे सब संता॥
जस जस देखा अंड पसारा। सो तोसे भाखूँ अनुसारा॥
परथम नर बैराट बनाया। तीन लोक यहि उदर समाया॥
प्रभुता आप आपनी भूला। किरिया करम करे तज मूला॥
कर्म कलंदर[1] ने भटकाया। पिंडज चार तत्त में आया॥
चार तत्त जड़ रहे अचेता। तीन तत्त अंडज में रहता॥
कम होय अधिकारी भाई। टूटे तत्त एक जब जाई॥
तब नर से पिंडज में आवे। पिंडज चार तत्त तन पावे॥

॥ दोहा ॥

नर देही ततहीन से, पिंडज माहिं पसार।
सार भुलानो आपनो, खानइ खानि खुवार[2]॥

(१) बैरागी का भेष। (२) ख़राब।

(चार खानों का भेद)

अब पिंडज से अंडज माहीं । पसुवत देह बनै कछु नाहीं ॥
जड़ता तन निरज्ञान कहावे । कर्म भोगि फिर भव में आवे ॥
भव के भार तत्त नस जावे । तीन तत्त अंडज तन पावे ॥
अस अस्थावर[1] उषमज[2] लेखा । सुरतवंत कोइ करे बिबेका ॥
हिरदे नर तत पाँच कहाई । पिंडज पसू चार के माहीं ॥
तीन तत्त अंडज तन पावे । दो तत्त उष्मज खानि कहावे ॥
अस्थाबर तत एक रहाई । यों ततहीन गुनन के माहीं ॥
पिंडज चार तीन तत आया । यों अंडज की खानि कहाया ॥

॥ दोहा ॥

कर्म करे बरियार से, तत्त छीन होइ जाय ।
तत्त घटे घट खानि में, दुख सुख माहिं बिलाय ॥

॥ सोरठा ॥

कही असज्जन रीति की, उतपति कर्म सुभाव ।
अंडज की करनी करे, यों तत्त तीन समाय ॥

॥ दोहा ॥

सागर में जो संख है, रंक[3] जीव कृत भाव ।
हिरदे यह गति यों भई, संख असज्जन राव[4] ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोले अस बाता । स्वामी समझि लीन्ह बिख्याता ॥
जो स्वामी भाखें मुख बानी । सो सब हिरदे सुनि मन आनी ॥
कहा असज्जन का परभावा । सो सब मोरि समझ में आवा ॥
अब वह बरनि कहो सहदानी । नर उष्मज तन क्यों कर जानी ॥
याका भेद कहो समझाई । नर तन तजि उष्मज को पाई ॥
उष्मज के लच्छन दरसावो । नर तन तजि उष्मज समझावो ॥

---

(१) जड़ सृष्टि जैसे पेड़ वगैरह । (२) गरमी से पैदा हुई सृष्टि । (३) दरिद्र । (४) राजा ।

सो बिरतंत[1] कहो अरथाई। लच्छन गुन कहो भेद बताई॥
कौन कर्म नर तन में कीन्हा। जासे उष्मज खान अधीना॥

॥ सोरठा ॥

नर तन की करतूत, उष्मज में बासा किया।
दई कर्म भ्रम भूत, मन तन में बासा लिया॥

॥ चौपाई ॥

ऊष्मज से नर तन कस पावे। भिनभिन कहो समझ में आवे॥
करनी कौन खानि में बूड़ा। कस नर देही मिले अगूढ़ा[2]॥
नर तन मिला भक्ति नहिं पावा। कौन कर्म के भोग प्रभावा॥
नर की देह जीव निस्तारा। सो नहिं पावे कौनि बिचारा॥
यह दुर्लभ तन सभी पुकारें। जिव बाजी नर तन में हारे॥
नहिं कछु ज्ञान विवेक बिचारा। बहु बहि जाय सिंधु की धारा॥
सिंधु कराल बहे बहु भाँती। भँवर करूर[3] उठे दिन राती॥
यह संसार भँवर बड़ भारी। जो उबरे जन रहे करारी॥

॥ दोहा ॥

नर तन तो पावे नहीं, पसु पंछिन में जाय।
अस्थावर उष्मज रहे, नर तन बाद गँवाय॥

(अज्ञानता और भोग विलास में आशक्ती का फल)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे नर बड़ा अयाना। सतगुरु सोधि चरन नहिं जाना॥
सतगुरु बिन नर फिरत भुलाना। ज्यों केहरि[4] भेड़न में आना॥
जग भेड़न की चाल चलाई। सतगुरु बिना रह्यो उरझाई॥
जुग जुग भटकि भूलि दुख पाया। मन इंद्री गुन माहिं चलाया॥
लच्छ अलच्छ कहूँ का भाई। को हिरदे कहे कथा बढ़ाई॥
इक इक बात कहूँ बिस्तारा। तो नहिं कहन उमर निरवारा॥

(१) वृत्तान्त। (२) निर्मल। (३) विकराल। (४) शेर।

बन बन खेले जीव सिकारा। मारि जीव पुनि करत अहारा ॥
दयाहीन मुख स्वाद सँवारा। जिह्वा का बंधन बिस्तारा ॥

॥ सोरठा ॥

जीवत मारे जीव, कधी दर्द आवे नहीं।
तलफत जीव नसाय, बेदर्दी बूझै नहीं ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे अधम नर रीति की, बरनन कहो कहँ लग कहूँ।
जग रीति को रहे जीति जिन से, मैं पुनी हारे रहूँ ॥
कोइ खोट नीक बिचार की अस, कहन में सब की सहूँ ॥
जग को निरखि निज नैन से, सुख चैन हित चित क्यों बहूँ ॥
खोटी कुभंडी चाल जग से, भाग कर गुरु को गहूँ ॥
अस कुटिल काँट करील[1] जग लखि, लोग से भाग्यों महूँ[2] ॥
जग जीव के यह कर्म अघ, बेफायदे नाहक लहूँ।
तुलसी अधम संसार की गति, हारि के हिरदे कहूँ ॥

॥ सोरठा ॥

अकरम करम बिचार, जीव हतत हारे नहीं।
आतम होत बिनास, आस अवस पावे यही ॥

॥ चौपाई ॥

बाक बिलावल[3] में समझाऊँ। जग अचेत की आस सुनाऊँ ॥
कहुँ कहा रीति भाँति बहुतेरी। कर्म कुटिल से प्रीति न फेरी ॥
जग को तोल तरक कर हारा। कहा बिलावल में अनुसारा ॥

॥ बिलावल ॥

हिरदे जग तरक तोल, बोल हेरि हारा ॥टेक॥
देखो दृग काल साल, माँगे स्वर्ग बास हाल।
लिये मोह भर्म जाल, ख्याल खोज पारा ॥
बूझै नहि साध संत, खोजे नहिं आदि अंत।
पावे कस पिया पंथ, बूड़े भव धारा ॥

---

(१) एक काँटेदार झाड़। (२) मैं भी। (३) एक राग का नाम।

ऐसा भव भर्म माहिं, काम क्रोध लारा ॥ १ ॥
राम प्रिये परन ठानि, मन से सुत त्रिये मानि ।
माया बस पड़त खानि, बूझ खोज पारा ॥
यहि बिधि अज्ञान बास, बूझे मृत अंत नास ।
प्रीति मुक्ति कहे अकास, स्वाँस नास न्यारा ॥
ऐसी बुधिहीन चीन्हि, बूझि ले गँवारा ॥ २ ॥
चाहत पद राम बास, रामही पूरन प्रकास ।
उन के बस काल फाँस, आस मौत मारा ॥
वासे कोउ करो न हेत, बूझो नर अंध अचेत ।
सूरति छबि नाम लेत, चौथे पद पारा ॥
याही बिधि बान ठान, संत पंथ न्यारा ॥ ३ ॥
देखो कृत कर्म काग, यासे पुनि निकसि भाग ।
साधो सत सुरति लाग, लख अकास पारा ॥
ऐसी लख मान सीख, नाहीं भव खानि नीक ।
ऐसी अज अमर लीक, हिरदे तन छारा ।
याही घट खोज रोज, चौज मौज मारा ॥ ४ ॥
भाखा सत मत पसार, ताका भव भिन अपार ॥
चाखा पद मूर सार, जाहिर जग सारा ॥
पावे सत मत्त सार, देखे अगमन बिचार ।
उतरे भव सिंधु पार, नौका भव वारा ॥
हिरदे घनघोर सोर, निरतो चित चारा ॥ ५ ॥
हिरदे तन माहिं पैठि, छाँड़ो नर सकल टेक ।
आदि और अंत देखि, टेक एक सारा ॥
कहनी मन में विचार, तेरा कोउ ना निहार ।
निरखो निज नैन पार, वाहि को अधारा ॥
हिरदे यह खूब अजूब, पावे मन मारा ॥ ६ ॥

मोको सब जक्त कहत, तुलसी के राम टेक ॥
जाना निज एक अलेख, संतन की लारा[1] ॥
जाके नहिं रूप रेख, देखा जाइ जो अदेख ।
ऐसा पद पार पेख, पंकज[2] गुरु चेरा ॥
हिरदे तत कर बिचार, राम रमत हेरा ॥ ७ ॥
हिरदे सतगुरु की दृष्टि, ता से निरखा अदृष्ट ।
सत्तलोक पुरुष इष्ट, वे दयाल न्यारा ॥
मोरी लौ चरन लार, छिन छिन निरखत निहार ।
कीन्हा पद पूर पार, काल जाल मारा ॥
हिरदे यह जक्त भ्रष्ट, देखा दीदारा ॥ ८ ॥
हिरदे यह अंड खंड, निरखा सगरा ब्रह्मंड ।
मारा मन काल डंड, छाँड छूँड न्यारा ॥
धरती और चंद सूर, निरखा सगरा जहूर ।
लीन्हा रन खेत सूर, सतगुरु मत सारा ॥
हिरदे दीदा निहार, भागे बट पारा ॥ ६ ॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे हेर बयान, हरख हृदय प्यारा लिया ।
जड़ जिव जग अज्ञान, कहा जाने यह भेद मत ॥

॥ दोहा ॥

जड़ जूड़ी त्रय ताप, जुगन जुगन तपता रहे ।
गहे न गुरु गम बास, आस अथिरता की गहे ॥

॥ चौपाई ॥

दुनिया माहिं दुरंगी रीती । नहिं कनिष्ट[3] नर निज घर प्रीती॥
सिंधु माहिं सीपी जिमि होई । यों कनिष्ट जिव जक्त बिगोई ॥
अब सुनु आगे नर बिस्तारा । यह मन अधम नेक नहिं हारा॥
परथम नर बैराटी काया । कर्म भोग पसु पिंडज पाया ॥
तत्तहीन पिंडज में भाई । अंडज तन तत बास कराई ॥

(१) साथ । (२) कँवल । (३) छोटा, यहाँ "नीच" के मानी हैं ।

अंडज में करनी से हारा । उष्मज खानि भया सिर भारा ।
चूक पड़ी करनी में भाई । ऊँचे चढ़ि नीचे गोहराई[१] ।
हिरदे सतगुरु बिन बौराया । आदि अपन तजि उलटा आया ।

॥ दोहा ॥

परथम नर तत पाँच में, पिंडज में तत चार ।
तीन तत्त अंडज रहे, उष्मज दो बिस्तार ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

उष्मज का लेखा समझावो । हिरदे को यह भेद सुनावो ।
अब सब कथा कहो बिस्तारी । समझ पड़े बिधि न्यारी न्यारी ।

(तुलसीदास बाच)

तब तुलसी कहे यह नर काया । बेद पुरान मुनिन भटकाया ।
कर्म रीति नीके समझाई । आदि अधर घर राह भुलाई ।
जग की रीति करन सब लागे । सिंधु गये तजि रहे अभागे ।
दुनिया जग दिन राति दिवानी । ब्रह्म बंध नर भये जिवप्रानी ।
समुँदर माहिं सीप का लेखा । यों कनिष्ट नर जीव बिबेका ।
सुरत सुमन[२] तजि नीचे आई । कुमन[३] करंदे[४] से चित लाई ।

॥ दोहा ॥

पाँच पचीसो तीन मिलि, इच्छा कीन प्रचंड ।
मार मार सब कोउ करे, ज्यों दुखिया पर डंड ॥

॥ चौपाई ॥

या बिधि उष्मज खानि समाया । नर तन तजि उष्मज में आया ।
परथम नर करनी बिस्तारा । तप फल राज भोग अनुसारा ।
जुगन जुगन तप मारग लीन्हा । नर तन तजे राज सुख कीन्हा ।
जिव फल भोगि रहे बहु भाँती । ममता बढ़ी अधिक दिन राती ।
चक्रवर्त राजा होइ जाई । अन्दर यों आसा उपजाई ।
कोइ संजोग पड़ा [illegible] माई । चहुँ दिस चक्र फिरे जग माहीं ॥

(१) पुकारा । (२) अच्छा मन अर्थात् ब्रह्मांडी मन । (३) बुरा अर्थात पिंडी मन ।
(४) कारिन्दा ।

चक्रवर्त होय सब बस कीन्हा । मकड़ जन्म देह तजि लीन्हा ॥
टूटे पाँव लँगड़ता चाले । माया ममता फिरे बिहाले ॥

॥ दोहा ॥

यों नर तन तजि जीव यह, उष्मज माहिं समाय ।
दुख सुख भोगे कर्म को, लख सत्ताइस माहि ॥

[उष्मज जीव संत चरन से कुचल जायँ तो उद्धार हो जाता है]

॥ चौपाई ॥

यह आसा उष्मज में लाई । लख सत्ताइस जोनि कहाई ॥
कृत्रिम[1] सँग मन माया ब्यापी । रोग सोग दुख सुख संतापी ॥
जो जो उष्मज खानि कहाई । भुगतत फिरे जुगन जुग माहीं ॥
कोइ संजोग उदय कहुँ होई । बिचरत संत मिले कहुँ कोई ॥
मारग पाँव चलत के माहीं । चरन पड़े जिव मुक्त कहाई ॥
पाँव तरे कोइ जीव कुचाना । जो जिव मरे धरे नर जामा ॥
यों उष्मज से नर तन आवे । और भाँति कहुँ गैल न पावे ॥
करनी करे भोग फल पावे । नर तन कोटि करे नहिं आवे ॥

॥ दोहा ॥

संत चरन अति बहुत बड़, जो जिव चरन खुँदाय[2] ॥
नर जामा पावे वही, संत चरन परभाव ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

स्वामी से पूछूँ इक बाता । सो मोहिं बरनि कहो बिख्याता ॥
चक्रवर्त मक्कड़ तन धारा । यह कारन कहो कौन बिचारा ॥

(तुलसीदास बाच)

कहे तुलसी हिरदे सुनु काना । ममता बढ़ी बढ़े अभिमाना ॥
यह हिरदे सब जग बिस्तारा । चक्रवर्त कहो कौन बिचारा ॥
बढ़ बढ़ गये राज मद माहीं । इंद्र पदी लेने को चाही ॥
जब ममता ने मारि गिराया । तन मकड़ यह यों बिधि पाया ॥

(१) बनावटी । (२) पिस जाय ।

माया बड़ी चूहड़ी[१] होई। नर बस करन मोहनी सोई ॥
जो जो जोनि खानि में डारा। जीव ममत माया बिस्तारा ॥

॥ दोहा ॥

हिरदे करम कराय के, देत पलीता बार[२]।
अन्दर आगि लगाय ज्यों, दगन करे तन झाड़ ॥

॥ चौपाई ॥

यह ऐसे मक्कड़ तन पाया। हिरदे तो को बरनि सुनाया ॥
उष्मज जीव खानि यों आवै। यों आसा सुख भोग समावै ॥

(हिरदे बाच)

इक हिरदे संदेह उठावा। स्वामी भर्म एक मोहिं आवा ॥
उष्मज से नर तन जिन पावा। संत चरन के पद परभावा ॥
ऐसे बरनि कही तुम बानी। यह दरसावो भिन भिन छानी॥
नर तन में लच्छन दरसावो। लच्छ अलच्छ सभी समझावो ॥
रहनि गहनि कौने बिधि होई। सो स्वामी कहो बरनि बिलोई॥
उष्मज खानि लच्छ बिस्तारा। नर तन में किन कस कस धारा॥

॥ सोरठा ॥

खानि लच्छ परभाव, नर तन में कस बूझिया।
संसै समझ उपाव, बरनि कहो सब भेद यह ॥

[असज्जन का रूप और लक्षण]

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह खानि सुभाऊ। दो तत दुर्गम पाँच तत माहूँ ॥
बुद्धिहीन जड़ता के माहीं। तन छूटे रस खानि सुभाईं ॥
जक्त माहिं बड़ भक्त कहाई। माला कंठी अधिक सुहाई ॥
चंदन तिलक लगावे खौरी। झूँठा ज्ञान करे बरजोरी ॥
दसन[३] बहुत बड़ बदन[४] भयाना[५]। गुरु के बचन सुने नहि काना॥
गुरु बानी कबहूँ नहिं माने। सुने न कभी न हित पहिचाने ॥

(१) भंगिन। (२) जलाना। (३) दाँत। (४) चेहरा। (५) भयानक।

गुरु को मेटि करे अधिकाई । निंदा करे गुरुन की भाई ॥
बातें करे मूढ़ की नाईं । ज्ञानी बनि कथि ज्ञान सुनाई ॥

॥ सोरठा ॥

यह अस बरन सुभाव, बर्तमान ऐसा रहे ।
गहे कर्म तन पाय, सहाय सुरत समझै नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

बातें कहत नाहि सरमावे । ज्वाब स्वाल नहिं पूरा आवे ॥
पाप अंदर मुख भाखे दाया । सो जिव जम के बंधन सहिया॥
नाक बड़ी सूवा की नाईं । पीरे नैन माहिं सुरखाई ॥
रति[1] करने चोरी से जावे । कहे कोइ लाख सरम नहिं आवे ॥
लम्बे पाँव परखिये सोई । अँगुठा से अँगुरी बड़ होई ॥
कान सुने स्वारथ की बाते । परस्वारथ के डगर[2] न जाते ॥
हाँसी करे और की मीठी । कहते ज्वाब बँधे मुख सीठी ॥
लेत पराया देत न भावे । माँगे जब लड़ने को जावे ॥

॥ दोहा ॥

हिरदे यह लच्छन सुनो, गुनो गिरा के माहिं ।
तन मन भीतर और है, कहते और बनाय ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

यह स्वामी इक संसै आई । मोरे भर्म भया मन माहीं ॥
संत चरन में जीव कुचाना । तुमने कहा भया नर जामा ॥
यह बिस्मय[3] भइ अन्तरजामी । स्वामी कहनि परख पहिचानी॥
संत चरन में जीव खुँदाना । भयानर बरनन और बखाना ॥
उष्मज से नर की भइ काया । उनका बरनन बरनि बताया ॥
यह बिचार करि मन के माहीं। स्वामी सन्मुख आनि सुनाई ॥
यह सुन के मन भया अँदेसा । स्वामी भाखो सकल सँदेसा ॥
याकी माहिं तफ़सील[4] सुनावो । विधि २ बचन समझ समझावो ॥

(१) मैथुन । (२) रास्ता । (३) संदेह । (४) विस्तार ।

॥ दोहा ॥

संत चरन बड़ भाग से, मिले कहैं सब संत ।
मोको सुनि संसय भई, बानी बचन बृतंत ॥

(संत की अपरम्पार महिमा)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी हिरदे सुन लीजे । यह संदेह कभी नहिं कीजे ॥
संतन की गति अगम अतोला । उनके बानी बचन अमोला ॥
उनका भेद कोई नहिं पावे । कोटिन जन्म समाधि लगावे ॥
क्या जानें जग जीव बिचारे । खोजत बड़े बड़े सब हारे ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस कहावा । वह खोजत कहिं पार न पावा ॥
बेदहु नेत नेत गोहरावे । औतारी कोइ पार न पावे ॥
यह का लखे जक्त जिव अन्धा । मन तन जन्म काल के फंदा ॥
दृष्टि पड़े देखन में सोई । वे अदृष्ट गति अगम अगोई ॥

॥ दोहा ॥

संतन की महिमा सभी, कहते माहिं लजाय ।
चरन आस सब कोइ करे, भागन से मिलि जाय ॥

॥ चौपाई ॥

वे हैं सत्त पुरुष अबिनासी । हैं सतगुरु पूरन पद बासी ॥
दृष्टि देह देखन में नाहीं । हैं अदृष्ट गति अगम अथाही ॥
उनकी गति सूछम समझाऊँ । हैं अरूप रूप नहिं नाऊँ ॥
सूरज तेज बड़ा जग माहीं । उनसे अधिक तेज कोइ नाहीं ॥
कोटि सूर इक रोम लजावे । संतन की महिमा अस गावे ॥
और कहाँ लगि बरनि बताऊँ । थोड़ी कहन माहिं समझाऊँ ॥
कोटि सूर इक रोम कहाई । ऐसे रोम करोड़न भाई ॥
कहँ लग हिरदे बरनि बताऊँ । यह सुनु सौदा अगम अथाऊँ ॥

॥ दोहा ॥

यह अथाह के थाह को, कोटिन करे उपाव ।
सतसँग बिन जाने नहीं, दया दीन परभाव ॥

॥ चौपाई ॥

हिरदे सतगुरु का पद भारी । यह कहा जाने जक्त अनारी ॥
किर्म कीट उष्मज के माहीं । जड़ता ज्ञान खानि में आहीं ॥
यह कहा जाने जीव अचेता । बुधि अबूझ हिरदे नहिं हेता ॥
चेतन तन में चेत न पावे । जड़ता तन की कौन चलावै ॥
जड़ तन खानि तीन बिस्तारा । चौथे नर देही निस्तारा ॥
तन अचेत सुधि अपनी नाहीं । पसुवत में नहि ज्ञान समाई ॥
संत कृपा बिचरन परभाऊ । यह अचेत वे सहज सुभाऊ ॥
उन के मन इच्छा में नाहीं । चले जातु हैं सहज सुभाई ॥

॥ दोहा ॥

मरत जीव जो चरन से, सहज चलत के माहि ।
जो खुँदाय कुँच के मरे, छूवत नर तन पाय ॥
संत चरन परताप से, खानि राह रुकि जाय ।
नर तन में सतगुरु मिलें, मेटें सकल सुभाय ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे सुनो गति संत की, बेअंत कोइ कहँ लग कहे ।
तन मन सुरति धर ध्यान करिके, लौ लगी चरनन रहे ॥
कहूँ और ठौर न छूट छटके, भटक भव भ्रम ना गहे ।
जो चरन लीन अधीन होइ कर, चीन्ह चित से ना बहे ॥
पसु कीट किर्म कदाचि कोइ जिव, जान नर तन वे भये ।
चित हित हिये में साँचि उपजे, सुरति तन मन से लये ॥
अस बचन बाक बिचार मन में, संत सब ऐसी कहे ।
हिरदे समझ सब सोध खोली, बोध बोली को गहे ॥

॥ सोरठा ॥

जो जिव चरन निवास, और आस बिसराय के ।
सत मत सूरत साथ, नित प्रति रहे लौ लाय के ॥

॥ चौपाई ॥

जिन हिरदे यह बचन बिचारा। कबहुँ न रहे काल की जारा॥
नर तन में सतगुरु पद सेवे। संत चरन चित से लौ लेवे॥
चरन छुवे छिन छिन में भाई। आठ पहर रहे लगन लगाई॥
मन में बास बसे नहि औरी। संत दया से बंधन छोरी॥
जड़ चेतन बंधन की गाँठी। अन्दर खुले भरम की टाटी॥
मैला मन साबुन से धोवे। गहि गुरु ज्ञान हिये में जोवे[1]॥
परम प्रकास भास दिन राती। दीपक ज्ञान ध्यान बहु भाँती॥
अगम अनैन नैन से न्यारा। सो जाने संतन का प्यारा॥

॥ सोरठा ॥

भक्ति पदारथ सार, यह नर जग जाने नहीं।
जग के बिषम बिकार, सो सब समझे साँच करि॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी इक संसय आई। हिरदे को कहो समझि सुनाई॥
उष्मज चरन भई नर देहा। नर तन में नहिं संत सनेहा॥
यह कारन कहो कौन बिचारा। भर्म खोलि कहिये निरवारा॥
चित संदेह जाय नर देही। उनके बचन कान नहिं लेई॥
सच बिस्वास नहीं मन आवे। कहो स्वामी यह कौन प्रभावे॥
महिमा संत सनातन गाई। क्यों याको बिस्वास न आई॥
सब अवतार भये जग आई। राम कृस्न दोउ नर तन माहीं॥
संत चरन की महिमा गावें। सब पुरान ऐसे गोहरावें॥

॥ सोरठा ॥

सुनें कथा नित कान, ब्यान बरन बूझें नहीं।
संतन को जस जान, गायें महातम सभी सब॥

(चलनी ज्ञान और सूप ज्ञान)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह देखत भूला। ठगि ठगि रचा काल तजि मूला॥

---

(१) ढूँढ़े।

सुनि सुनि के सब बूझ बुड़ाई । खेत रहा खर नाज गोड़ाई ॥
खेत रहा खर से भरि भाई । वा में नाज कौन उपजाई ॥
यहि बिधि ज्ञान सुने नर लोई । नाज निकाइ[1] खर खेती बोई ॥
जैसे चलनी चून छनावे । चून सार गिरि चूकर[2] पावे ॥
यहि बिधि ज्ञान गहे जग सारा । तत्त बस्तु कोइ नाहि बिचारा ॥
ज्ञान मान की बड़ी मोटाई । भक्ति गरीबी कोइ न पाई ॥
संत चरन यासे नहिं भावे । क्योंकर हिरदे साँच समावे ॥

॥ दोहा ॥

सूप ज्ञान सज्जन गहे, फूफर[3] देत निकार ।
सार हिये अंदर धरे, पल पल करत बिचार ॥

॥ चौपाई ॥

हिरदे नर यह बड़े अभागे । सार छाँड़ि चूकर में लागे ॥
कहो वे फुलके[4] चहें बनाये । चूकर के फुलके किन खाये ॥
यह जग चूकर रीति समाना । संत चून फुलके पर ध्याना ॥
चून चीन्ह कर करें रसोई । या बिधि जग खावे सब कोई ॥
चूकर में नहिं भूख नसावे । यहि कारन कहि कर गोहरावे ॥
कोइ सज्जन जन परम सनेही । माने बचन करे हित वेही ॥
अगम सुधा रस अमृत बानी । सो उनने गहे करि पहिचानी ॥
संत बचन हिरदे अभिलाषा । रस बिसेष सज्जन ने चाखा ॥

॥ दोहा ॥

अमृत रूपी संत के, बचन गहे सुन कान ।
सो सज्जन सत रीति में, हित चित करत प्रमान ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह खानि सुभावा । भइ नर देह जड़ तन से आवा ॥
देह धरे छूटे जस खाना । जाका जैसे उपजे ज्ञाना ॥
नर तन पाय कहो का कीन्हा । लच्छन तो जड़वत के लीन्हा ॥

---

(१) उखाड़ कर । (२) चोकर । (३) भूसी । (४) पतली रोटी ।

कर्म प्रभाव ज्ञान उपजावे । सतगुरु बिन को ज्ञान सुझावे ॥
जो रँग पगे वही खसबोई[१] । निकरें तदपि तरंगें सोई ॥
भँवर न करे चंप पर बासा । वह सुगंधि सँग रहे उदासा ॥
ऐसा मन भँवरे की नाईं । नीकी तज फीकी पर जाईं ॥
नीम कीट[२] जस नीम पियारा । बिष को अमृत कहे गँवारा ॥

॥ दोहा ॥

बिष रँग के सँग में पगे, किया न मन को तंग ।
संग मिलै मधु मालती, जब निकसै कछु रंग ॥

॥ चौपाई ॥

मन भँवरा सतसँग जब पावे । हिरदै बिषय बास जब जावे ॥
ज्यों हलवाई करे जलेबी । अंदर खैंच पिये रस गैबी ॥
अस संगति रस पिये अघाई । जब यह मन की दुरमति जाई ॥
संगति में सुनि देइ न काना । जासे नर तन में भरमाना ॥
संगति करे रीति नहिं जाना । कस कस छूटे मन अभिमाना ॥
यह हिरदे यों नर तन हारा । यों मद ममता ने जग मारा ॥
बिन सतगुरु नहिं कर्म नसाई । जो कदाचि करे कोटि उपाई ॥
वे सूरज यह किरनि कहावे । भूमि भास तजि रबि में जावे ॥

॥ दोहा ॥

सूरज बसे अकास में, किरनि भूमि पर बास ।
जो अकास उलटे चढ़े, सो सतगुरु के दास ॥
अललपच्छ[३] का अंड ज्यों, उलटि चले असमान ।
त्यों सूरति सत सजन की, आठ पहर गुर ध्यान ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह सज्जन रीती । जोई असज्जन करे अनीती ॥
सज्जन हंस मुक्ति पद पावे । बग बपुरा मछरी को चावे ॥
ऐसे असज्जन सज्जन लेखा । उभय[४] बीच कछु कह्यो बिबेका ॥
यह जग अंध असज्जन जाने । संतन का मति कहा पिछाने ॥

(१) खुशबू, सुगंधि । (२) नीम का कीड़ा । (३) देखो नोट पृष्ठ ८ में । (४) दो ।

यों भई अंध धुंध जग माहीं। मनमत ज्ञान कहैं गोहराई॥
साख महातम की पढ़ि गावैं। फूटे हिया समझ नहिं लावैं॥
कर्म कांड पर लीन्ह घटाई। जो उन कही समझ नहिं पाई॥
यों अज्ञान बसा जग माहीं। कछु कछु खानि सुभाव रहाई॥

॥ दोहा ॥

यों हिरदे अज्ञान में, सब जग रहा भुलाय।
बिन सतगुरु उपदेस के, जुग जुग खेई[1] खाय॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

स्वामी अगम सुगम समझाई। मन मोरे में खूब समाई॥
अंडज उष्मज के कहे बैना। स्वामी बचन सुने सुख चैना॥
अब वह कथा कहो समझाई। अचल खानि का भेद बताई॥
नर अस्थावर[2] में तन पाया। जब बैराट प्रथम से आया॥
जब की करनी कहो बनाई। नर तन से अस्थावर माहीं॥
तीस लाख अस्थावर जाती। उत्पति बरन मरन बहु भाँती॥
सो लेखा मोको समझावो। कस कस भयो भेद बतलावो॥
ऋषी मुनी जप तप बहु कीन्हा। वाहि समय भया अचर अधीना॥

॥ सोरठा ॥

ऋषी मुनी जप तप करें, जग कस कीन्ह बिचार।
नर तन तो तबही हता, कस चर अचर समान॥

(नर को स्थावर योनि कैसे मिलती है)

(तुलसीदास बाच)

॥ छन्द ॥

हिरदे सुनो गुन बेद ने, जग बाँधि कर रचना करी।
मुनिजन ऋषी तप जोग करि, जग बोध नर हिरदे धरी॥
कह्यो ज्ञान गुझ[3] बैराग बानी, बचन सुनि गुन में परी।
गुन गो[4] गिरा[5] बस बाँधि करिके, भर्म की आसा भरी॥

(१) बिष्टा। (२) जड़ सृष्टि अर्थात् ऐसी सृष्टि जो चल फिर नहीं सकती। (३) गूढ़। (४) इंद्री। (५) बानी।

महातम कहे फल करम के, जस धरम की धारन धरी।
सुभ असुभ अंक बढ़ाय करि, जिव जन्म जग बुद्धी हरी॥
कोइ बोध सोधि न आप अस, जस नारियर भीतर गरी।
जैसे बिधी बादाम मेवा, मद्ध में मींगी भरी॥
कोइ संत ने यह अन्त अन्दर, देख कर सूरत करी।
जग रचन के बस बास मन तन, तरँग में सूरत जरी॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान जोग बिज्ञान तप, सब मुनि कीन्ह प्रमान।
जक्त आस बिस्वास दे, कर्म ईस परधान॥

॥ चौपाई ॥

जैसे पुत्र सराफ सिखावे। कौड़ी से पैसा परखावे॥
ज्यों गुड़ियाँ लड़की लौ लावें। साँच पिया मिलने को चावें॥
साँचे पिया मिले नहिं भाई। झूठे काल दीन्ह उरझाई॥
पिय तजि के दधि बेचन आईं। जब से गुजरी[1] नाम कहाईं॥
जब गोपाल गौ पालन लागे। रस दधि मोल बिकन जब लागे॥
मन गोबिन्द गौ इंद्री माहीं। नाद बिन्द दधि बेचन आईं॥
सो बिंद ने बिंदाबन कीन्हा। तन बैराट समझि जिन लीन्हा॥
यह कोइ भेदी भेद बतावे। जब रचना की बिधि को पावे॥

॥ दोहा ॥

यों रचना यहि बिधि भई, छूटा मूल मुकाम।
स्याम कंज के बीच में, आय रहे निज धाम॥

॥ चौपाई ॥

जग ब्योहार कर्म की बाजी। भूले मुल्ला पंडित काजी॥
पढ़ि पढ़ि के सब खोज लगावें। पढ़ने पार भेद नहिं पावें॥
मुरसिद गुरू मिला नहिं भाई। परखे बिना सराफी नाहीं॥

---

(१) गुजरी अर्थात् गूजर जाति की स्त्री जो पछाँह में दूध दही बेचती हैं और दूसरे उसके अर्थ "गुज़री हुई" या "पतित" के होते हैं जिससे इस चौपाई में खूबसूरती आ जाती है।

ज्यों सराफ रुपिया को परखे । गुरु दें द्रस्टि हिये में हरखे ॥
पाट कीट[1] की होत हगारा । गुरु लछ[2] से पीतंबर पारा[3] ॥
अस गुरु ज्ञान मिले जब भाई । कर्म कीट से लेइ छुटाई ॥
परथम सतगुरु पद नहि चीन्हा । जब बैराट कर्म बस कीन्हा ॥
सो नर धरि आतम यह देही । छूटा गुरु पद सब्द सनेही ॥

॥ दोहा ॥

सूरत भटकी भर्म में, सब्द गुरू का ध्यान ।
आप अमर पद को तजा, कहँ पावे बिसराम ॥

॥ चौपाई ॥

कुंदन से सोना कर दीन्हा । सोना खोंट खार से कीन्हा ॥
या बिधि जीव कर्म के खारा । क्योंकर के पावे निरबारा ॥
परथम नर पिडज की काया । फेरि पिंड पसु जोनि में आया ॥
अंडज कर्म जोग अनुसारा । उष्मज जब से आइ तन धारा ।
अस्थावर तत एक रहाई । कर्म जोग करनी समझाई ॥
कुंदन से अस सोन कहाया । खार कर्म जिव खोंट मिलाया ॥
अब यह कथा कहूँ बिस्तारी । कुंदन सोन खोंट भया भारी ॥
दीपा मुनि करे जोग अभ्यासा । जोजन एक द्वारिका पासा ॥

॥ दोहा ॥

दीपा मुनि जोगी कहे, रहे द्वारिका पास ।
जोजन भरि वहि नगर से, करते तप अभ्यास ॥

॥ चौपाई ॥

यह गुजरात द्वारिका नाहीं । वह बूड़ी है जल के माहीं ॥
महातम बड़े मुनिन के माहीं । जिन सास्तर कीन्हे जग माहीं ॥
तप जप जोग भया परवेसा । यह सास्तर कीन्हे उपदेसा ॥
कर्म उपासना ज्ञान दृढ़ाया । या में सब जग को उरझाया ॥
ज्ञान कांड मारग मत कीन्हा । फिर नर से नरदेही लीन्हा ॥

(१) रेशम का कीड़ा । (२) दृष्टि । (३) बनाया ।

जिन उपासना आस बिचारी। मृग पसुवत अद्यादिक धारी॥
कर्म कांड जो जीव बिचारे। सो भये अचर खानि में सारे॥
जिन तप जोग किया मुनि राया। परथम तिन मुक्ती को पाया॥

॥ दोहा ॥

मुक्ति जो पूछे मुक्ति को, मेरी मुक्ति बताय।
जो घट चीन्हे आपने, मुक्ति मुक्ति होइ जाइ॥

॥ चौपाई ॥

भई प्रथम रचना में काया। जबका बरनन बरनि सुनाया॥
कर्म अकर्म कीन्ह जब काया। जब नर से अस्थावर आया॥
जंगम[1] भया काठ का कीड़ा। तज जंगम अस्थावर पीड़ा॥
कुंदन अंस आतमा आई। तन संचय[2] में सोन कहाई॥
कर्म खार सास्तर उपजाया। या बिधि सोना खोट कहाया॥
जब न्यारीगर[3] सतगुरु पावे। सोना खार खोंट अलगावे॥
तब निस्कर्म आतमा होई। गुरु किरपा से मारग जोई॥
बुन्द सिंधु मिलि भया अकेला। सो कुंदन सतगुरु का चेला॥

॥ दोहा ॥

यह मारग गुरु मेहर से, चेला चीन्ह बिचार।
निराधार इक-रस रहे, कुंदन चेला सार॥

॥ चौपाई ॥

कीड़ा कोट बीज बिस्तारा। यों उपजे अस्थावर सारा॥
वही आस अस्थावर बासा। काठ घुने कीड़ा रहै पासा॥
यह इनको उत्पति समझाई। कीड़ा रहै काठ के माहीं॥
जो रस भास करै परकासा। अंत जहाँ जिन लीन्हा बासा॥
पूरब प्रीति काठ सँग कीटा। सोई स्वाद लागु जेहि मीठा॥
इच्छा आसा देत घुमाई। जहँ मन लीन[4] देह तस पाई॥
चार खानि उत्पति रस माया। चर और अचर चराचर खाया॥

---

(१) ऐसी सृष्टि जो चल फिर सकती है। (२) थैली। (३) सोना को साफ करने वाला। (४) आशक्त।

उपजे मरे धरे फिर देही। आसा बँध बस बास सनेही ॥

॥ दोहा ॥

जुगन जुगन जड़ जीव यह, बिष बिसेष रस खाय।
भँवर पुहुप गुंजार ज्यों, मायहिं माहि बिलाय ॥

[स्थावर से एक दम नर तन कैसे मिल सकता है और मनुष्यों की बुद्धि की दशा]

॥ चौपाई ॥

अब आगे का सुनो बिचारा। काठ कीट बंधन निरबारा ॥
जिन आसा अस्थावर माहीं। सो रहे कीट काठ में जाई ॥
यों बंधन बिस्तार बताया। अब छूटन का सुनो उपाया ॥
कीट छाँड़ि नर देही पावा। जो जेहि काठ का पलंग बनावा॥
बना सिंघासन आसन संता। जो वहि माहिं कीट नर अंता॥
कीट काठ में जो रहे भाई। जो जन नर भये चरन छुवाई॥
सो सुतार तन भया बढ़इया। कीट काठ से संत कढ़इया ॥
जस बुधि रही काठ के माहीं। जस लच्छन भाखूँ समझाई ॥
छिनक[1] बुद्धि भरमावे कोई। तुरत भर्म ले आवे सोई ॥
छिनक बुद्धि मति हीन बिचारे। सत मत में जग रीति निहारे ॥

॥ दोहा ॥

काठ बुद्धि काया धरी, कीट सुभाव निहार।
सत मत में पाया नहीं, उलटे करत बिचार ॥

॥ चौपाई ॥

जो जिव अचर खानि से आया। धरि नर देह चरन जिन पाया॥
करनी खानि माहि कहा होई। इक तत करनी जड़ता जोई॥
पाँच तत्त करनी करि हारे। एक तत्त कहो कौन उबारे ॥
जो कोइ संत भूमि जहँ बैठे। जीव भूमि के कर्म उलेटे[2] ॥
जीव छुड़ाय जोनि से भाई। संत भूमि जहँ चरन छुवाई ॥

---

(१) एक छिन में। (२) पलट दिये।

(महादेव पारबती की कथा)

एक समय संकर और गौरा । चले जात मारग बड़ भोरा ॥
संकर बड़ी डंडवत कीन्हा । पारबती मन भया मलीना ॥
होइ मलीन संकर से पूछी । काहे करो डंडवत छूछी ॥
देवल देव मनुस नहिं होई । कीन्ह डंडवत दीख न कोई ॥
जब संकर ने बचन उचारा । बड़ी भूमि के भाग अपारा ॥

॥ दोहा ॥

पारबती या भूमि का, क्या कहूँ बरनन भाग ।
दस हजार के बाद[1] यहँ, संत रहे यहि जाग[2] ॥
सुनु हिरदे कहुँ संत की, महिमा अगम अपार ।
कर प्रनाम वहि भूमि को, संकर बारम्बार ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे बड़े वहि भाग भुमि, जहँ संत के चरना पड़े ।
संकर करी परनाम अति सुख, सीस भूमी पर धरे ॥
बारम्बार करि डंडवत, जिन नीर से नैना भरे ।
गदगद पुलक सब गात कहुँ क्या, हरष हिये से ना टरे ।
संकर बिकल बेहाल हिरदे, कहत में छाती भरे ।
रहि गै कहें यहँ संत आगे, सहसदस बर्स के परे ॥
गहे चरन भूमि पुनीत जो जिव, संत ने कारज करे ।
हिरदे हरष मन तरक तोले, काज संतन से सरे ॥

॥ दोहा ॥

संत चरन अति बहुत बड़, जानत चतुर सुजान ।
जो संतन हित ना करै, सो नर पसू समान ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

अस्थावर नर देह अलेखा । भइ कस साहब कहो बिसेखा ॥
कहो करनी उन कौन बनाई । पुनि फिर कस नर देही पाई ॥

(१) पीछे अर्थात् बीते हुए काल में । (२) जगत ।

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

अस्थावर जिव जड़ अस्थूला । कौन कौन कहुँ या की भूला ॥
जुगजुग कल्प कल्प कहूँ लेखा । कहँ लग बरनन कहूँ बिसेखा ॥
की कोइ समय जोग परभाऊ । की कोइ संत कृपा भई काहू ॥
फूल पात फल पान खवाये । अस्थावर अद्यादिक आये ॥
बिचरत कोई संत चलि आये । भावभोग जिन रुचिर लगाये ॥
जो जो बृच्छ पान फल बीड़ा । जिन जिन पायो मनुस सरीरा ॥
सो जेहि के लच्छन दरसाऊँ । लच्छ अलच्छ दोऊ समझाऊँ ॥
गुन औगुन जस जस करतूती । भाखूँ होनहार मजबूती ॥

(स्थावर से नर तन में आये हुये जीवों का लच्छण और सुभाव)

॥ दोहा ॥

अस्थावर की खानि का, नर तन माहिं सुभाय ।
दाव पेच जस जस वही, बरनि कहूँ अलगाय ॥

॥ चौपाई ॥

हाँपत चले राह के माहीं । बैठत उठे पीर अधिकाइ ॥
बाई रहे बतीसो[1] माहीं । बाइ चार नित प्रतिहिं सताई ॥
पँच हथियार सवारी चावे । घोड़ा चढ़े हँफन सी आवे ॥
जामा फेंटा पाग सुहावे । नित दरबार करन को चावे ॥
जीव मारि मन आनँद माहीं । छौंके खाय बहुत सुख पाई ॥
पूजा सेवा अधिक सुहाई । तीरथ बर्त करे मन लाई ॥
और उपासना नेम बिचारै । ब्राह्मन मिलै चरन पर वारै ॥
चुगली सैन करै बहु भाँती । हिरदे माहिं बसै दिन राती ॥
हानि लाभ जिनके बहु नीके । नीका निरखि करे मन फीके ॥

॥ दोहा ॥

यह अस्थावर खानि के, हिरदे लच्छ सुभाव ।
और बरनि आगे कहूँ, मन के छलबल दाँव ॥

(१) बत्तीस दाँत ।

॥ चौपाई ॥

अब खाने का स्वाद सुनाई । दूध भात नीके मन लाई ॥
उरद दाल फुलकी बहु भावे । माहिं खटाई मिरच मिलावे ॥
कढ़ी बरी तरकारी माहीं । यह सब स्वाद अवस कर चाही ॥
मीठा मिले चोरी से खावे । देखे खात तो हाथ छिपावे ॥
जो कोइ माल पराया आवे । लेने को बहु मन ललचावे ॥
कौड़ी खरचत प्रान गँवाई । वैसेइ कोइ दे आन खिलाई ॥
नाच तमासा देखै जाई । मन में उमँग रहै बड़ भाई ॥
हरि चर्चा में नींद जुड़ावै । जो जगवै तेहि मारन धावै ॥

॥ सोरठा ॥

सुनु हिरदे यह भेद, कर्म सुभाव लच्छन कहूँ ।
आगे सुनो निषेद, जो जो भाखूँ बाक जस ॥

॥ चौपाई ॥

आमै सामै[१] देत लड़ाई । लबराई[२] की बात बनाई ॥
जब कोइ लड़े देइ हँसि तारी । अपने अवगुन नाहिं बिचारी ॥
माया मोह बहुत मन लावे । कधि रोवे कधि मंगल गावे ॥
जो कधि हानि होय घर केरी । तो मारे सब घर का घेरी ॥
जूझ झपट करि रहे रिसाई । खाने को कहे गुसा[३] कराई ॥
जो कोइ घर में बड़ा कहावे । जाकी बात नेक नहिं भावे ॥
उत्तर पर प्रति-उत्तर देई । लोचन रूख[४] सनेह न जेही ॥
मूल मुलाजा[५] नेक न लावे । अपनी खरी बात ठहरावे ॥

॥ दोहा ॥

यह अस्थावर खानि के, अस सुभाव जड़ताय ।
अपनी अपनी कहत है, पूरब अंग प्रभाय ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हिरदे कहे स्वामी समझाई । सो सब कहन समझ में आई ॥

---

(१) वक्त बेवक्त । (२) झूठ । (३) क्रोध । (४) रूखी आँखें । (५) रू रिआयत ।

अचर खानि का कहा बिबेका । सो सब बैठा मन में लेखा ॥
नर पिंडज पसु पिडज आया । यह पसु पिंड धरी कस काया॥
यह हिसाब मोको समझावो । स्वामी दया दीन दरसावो ॥
कौन जोग परभाव कहाया । ता से पसु पिंडज में आया ॥
सो बरतंत कहो समझाई । जासे चित की संसय जाई ॥
कर्म कांड जब हता न कोई । करनी कहो कौन सी होई ॥
देव पिंड पित्तर नहिं पूजा । केहि कारन दुरमति में जूझा॥

॥ दोहा ॥

सास्तर बेद पुरान यह, कब से संग सहाय ।
हाय हाय बंधन पड़े, लख चौरासी माहिं ॥

[नर से पशु योनि कैसे पाता है]

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी हिरदे सुन लीजे । कहुँ बरतंत कान मन दीजे ॥
पाँच तत्त नर कीन्ह बनाई । इच्छा नारि तुरत उपजाई ॥
जड़ चेतन जब गाँठि बँधानी । इच्छा नारि भई पटरानी ॥
इन अपना परिवार बसाया । सार तेज का भास नसाया ॥
जब नर हुआ जगत का रासी[1] । राज करे मन इच्छा बासी ॥
जो इच्छा मन उठे तरंगा । जस जस खेल करे परसंगा ॥
उधर आस सब दीन्ह छुटाई । इधर तरंग मन इच्छा माहीं ॥
जब कछु रहे नाहिं बिस्तारा । नर का नर होवे करतारा ॥

॥ दोहा ॥

इच्छा रानी सँग हती, आप रहे करतार ।
जो तरंग मन में उठे, वैसा करे बेवहार ॥

बेदोक्त करनी

(पिंडदान इत्यादि) मनुष्य को तन की आसा धराती है

॥ चौपाई ॥

ऐसे कई दिवस गये बीती । तेहि पाछे भइ ऐसी रीती ॥

---

(१) रसिया ।

ब्रह्म सृस्टि सब जक्त कहावे । उतरे नहि नहिं बंधन आवे ॥
जब बेदन का किया बिचारा । ओंकार जब सब्द निकारा ॥
सो भया सब्द तिरकुटी माहीं । बेद नाद ने यों उपजाई ॥
जब जब बेद किया बिस्तारा । कर्मकांड करनी निरबारा ॥
अस बेदन ने कही पुकारी । यासे सृस्टि बही चौधारी ॥
ब्रह्म सृस्टि का तेज उड़ाई । जब नर सृस्टि भई सुनु भाई ॥
जब रहि ब्रह्म सृस्टि बरहाला[१] । परमहंस मति जब से चाला ॥
वही समय बेदांत बतावे । यह नर मनुष ब्रह्म ठहरावे ॥
ब्रह्म तेज परथम था भाई । तेज गये नर मनुष कहाई ॥
दिब्य ज्ञान हिरदै रहै बासा । जब बंधन से ब्रह्म खुलासा ॥
सो बेदांत बाक बतलावै । नर बुधि ज्ञान ब्रह्म ठहरावै ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म सृस्टि पहिले हती, जब रहे ब्रह्म प्रमान ।
नर सृस्टी जब से भई, बेद बचन उरझान ॥

॥ चौपाई ॥

नर सृस्टी जब से भइ भाई । केवल कर्म बेद अधिकाई ॥
नर घर अधर तजे जग माहीं । करनी कर्म कार उपजाई ॥
यासे नर तजि पिंडज बासी । पसुवत देह धरै अबिनासी ॥
पसु पिंडज ऐसे उपजाया । नर तजि देह पसू में आया ॥
पिडज सब जो जात कहाई । फिरि फिरि रहे जहाँ लगि भाई ॥
गिनती का कछु अन्त न छेवा[२] । यह सब संत बतावें भेवा ॥
हिरदे जग याको कहा जाने । संत काज सज्जन को छाने ॥
वह बिबेक रस पिये बिचारी । छूटि भर्म रुचि की अधिकारी ॥

॥ दोहा ॥

नर पिंडज पसु पिंड में, यों अस कियो प्रबेस ।
करनी कर्म कराय के, बेद बरन जग भेस ॥

(१) कायम । (२) हद ।

॥ चौपाई ॥

षटदर्सन सनमान बढ़ाये। यह सब बेद मते में आये ॥
जोगी जती सेवड़े[1] भाई। सन्यासी दुरवेस कहाई ॥
और जंगम[1] इक जाति कहाई। ऐसे षट दर्सन दरसाई ॥
इन से भये छानवे पीछे। सो प्रबेस पाखँड जग बीचे ॥
यहि पाखँड ने जक्त भुलाया। अपनी पूजा बर्नि बताया ॥
याके संग सृस्टि सब लागी। भव के भूत भये अनुरागी ॥
किरिया करन मरन जब लागे। बाम्हन पिंड करे जग आगे ॥
पिंड सरीर आसा बँधवाई। यों भया जीव बँध के माहीं ॥

॥ दोहा ॥

पिंड आस बँधवाय के, अबिनासी रहे छाय।
अपनी आदि बिसारि के, कोइ पीछे नहिं जाय ॥

॥ चौपाई ॥

यों परबेस खानि का लेखा। बूझै को जो करे बिबेका ॥
यों आसा पिंडज की काया। कर्म पिंड पिंडज में लाया ॥
पिंड कर पिंड बँधाई आसा। यों पिंडज पसु तन में बासा ॥
यह सब बेद कीन्ह उपचारा[2]। बाँधे सभी सिरन पर भारा ॥
यासे नर पसुवत में आया। दुर्लभ तजि जग में भर्माया ॥
पसुवत ज्ञान हीन है काया। यह प्रभाव से बहुत भुलाया ॥
एक रोग की औषधि नाहीं। पचिपचि मरै हकीम कहाई ॥
पावे संत चरन निरबारा। और नहीं कोइ भाँति उबारा ॥

॥ दोहा ॥

पसुवत पिंडज अंग को, नहिं कछु ज्ञान समाय।
सँग अज्ञान जड़ देहि में, औषधि लगे न ताहि ॥

(पशु से नर चोला फिर कैसे मिलता है)

॥ चौपाई ॥

यों बिधि हिरदे कारज नाहीं। दया संत की जो बनि आई ॥

---

(१) भेषों के फिरकों के नाम। (२) करतूत।

जब कभि संत चरन चलि आये । किरपा कीन्ह दीन दिल लाये ॥
जब कबहूँ कोइ जीव जो दाया । चरन धूरि रज पावन[1] पाया ॥
चारा चरत चरन पड़ि गयऊ । वहि प्रताप से नर तन भयऊ ॥
उड़ी रज धूरि चरन की भाई । किनका उड़ि लागै तन माहीं ॥
दधि घृत मट्ठा और असवारी । रज पावन नर देहि सँवारी ॥
कहुँ मारग चलते परछाई । पड़ी जाय जिव सुफल कहाई ॥
पिंडज से यह यों तन पावे । मनुस सरीर सुभग जब आवे ॥

॥ दोहा ॥

संतन की यह मेहर से, जो कछु होय उपाव ।
नाहिं और तादाद की, बात बिना बरनाव ॥

॥ चौपाई ॥

यह अब पसुवत से नर आवा । जाका सुनो सकल परभावा ॥
गुन लच्छन लख लीक लखाऊँ । जस जस परबल प्रकृत सुभाऊ ॥
बैरागी होइ उन्मति[2] धारी । करै ज्ञान जो बेद बिचारी ॥
जग ब्योहार हरख बहु माने । उजले बस्तर सुभग सुहाने ॥
सौड़[3] सुपेदी पलँग बिछाई । पान सुपारी बीड़ा खाई ॥
जो सन्मान करे कोइ आई । बहुत भाँति से सीस नवाई ॥
बोलै बचन मीठ मधुराई । करै सनेह छाँड़ि चतुराई ॥
काँचे बचन बाक नहिं काढ़ै । प्रीति परस्पर नित प्रति बाढ़ै ॥

॥ दोहा ॥

पिंडज से जो नर भया, जाका यही सुभाव ।
और बहुत कहँ लग कहूँ, बरनन का परभाव ॥

॥ छन्द ॥

पिंड के प्रभाव पुनीत नर यह, देह पसुवत की धरे ।
बिधि बेद के मारग मते से, आप जिव बंधन पड़े ॥
जासे भई बहु खानि काया, ममत माया में मरे ।
गुरु ज्ञान बचन बिचार कहे कोउ, नेक हिरदय ना धरे ॥

(१) पवित्र । (२) मस्ती । (३) बिछौना ।

बिन संत के नहिं अंत पावे, खोजि के पचि पचि मरे।
जिन पै कृपा भइ संत की, जब अंत के कारज सरे॥
नहिं और ठौर उपाव लागे, भाग कर्मन के भरे।
हिरदे दया दिल संत बिन, नहिं जीव को कारज सरे॥

॥ दोहा ॥

संत चरन कारज सरै, हरै सकल बिष ब्याधि।
साध सुरति चरनन रहे, टारै सकल उपाधि॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

नर की नर धर देही पाई। सो साहब कहो बरनि सुनाई॥
सो बरतंत कहो बिधि लेखा। समझ पड़े बिधि बाक बिबेका॥
करनी कौन कीन्ह करतूता। क्योंकर कीन्हा मन मजबूता॥
की कोइ करतब के बसि पाई। की सतगुरु की दया बसाई॥
की कोइ और रंग रस भावा। सो जा से नर देही पावा॥
संतन की सब साख बिचारी। दुर्लभ सब कहें सब्द सिहारी॥
सब सतसंग सुनावत संता। बिन सतगुरु नहि पावे पंथा॥
अस अस बरनि कही सब बानी। सो साहब मोहिं कहो निसानी॥

॥ दोहा ॥

नर तन से नर होत है, बहुत कहें नहिं होत।
यह जग में बायब[1] सुने, बिन करनी कहें थोथ॥

॥ चौपाई ॥

यह स्वामी अचरज की बाती। को जाने यह समझ सनाथी॥
भूत भवेस[2] बरन जिन कीना। उनकी सुरति कहाँ भइ लीना॥
आगे कही भई वहि भाखे। सो सूरति रस कसकस चाखे॥
कहँ को गये कहा उन पाया। ऐसी कहो कहँ दृस्टि समाया॥
यह कहुँ कहन जक्त नहि जाना। दृस्टि न पड़ी सुनी नहिं काना॥
यह बरनन भिन भिन समझावो। हिरदे के दिल का दरसावो॥

---

(१) अचरजी। (२) भविष्य।

जो परबोध मोद मन आवे। हिरदे की तब सुरति जुड़ावे ॥
कई दिवस का सोच समाना। सो निरबार कहो बिधि नाना॥

॥ दोहा ॥

कौन करसमा[1] देखि के, सब कहें बिधी बयान।
भिन भिन भाखो उधर की, बाचा बचन प्रमान ॥

[नर का पुनर्जन्म नर तन में क्योंकर होता है]

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह बरन बयाना। भाखूँ संत बचन परमाना ॥
पूछी तैं नर से नर भइया। यह प्रतिबाक बचन तैं कहिया ॥
सुनु याकी बिधि कहूँ बुझाई। परथम से कहूँ बरनि सुनाई ॥
बुंद सिंध से निर्मल आया। चोला पहिर धरी नर काया ॥
काया के गुन ब्यापैं नाहीं। या बिधि रहे बदन के माहीं ॥
आसा तन बंधन नहि भासी। रस माया से रहै उदासी ॥
जग का राग त्याग बैरागा। रहे अंतर इन से मन भागा ॥
नहिं संग्रह तजि त्याग कहाई। उभै बंध बस के नहिं भाई[2] ॥

॥ दोहा ॥

आस बास बस ना रहे, निर्मल अंग उदोत[3]।
पोत परख अपनी रहे, ज्यों दरियाव का सोत ॥

॥ चौपाई ॥

जैसे बादल जल भरि लाया। ज्यों अकास भुइँ पर बरसाया ॥
भुइँ पर बुंद पड़ा जल जेता। गया तड़ाग[4] सलिता[5] में तेता॥
जो समुद्र से बाहर बरसा। जल भूमी मिलि मैला परसा ॥
जो जो बुंद पड़ी समुदर में। निरमल बुंद धसा अंदर में ॥
यह नर तन यों ऐसा पाया। जैसे बुंद सिंध में आया ॥
जो जल भूमि पड़ा सुनु भाई। मैला नीच कींच के माहीं ॥

---

(१) कौतुक, इशारा। (२) वह गृहस्थाश्रम का छोड़कर भेष नहीं लेते क्योंक उन के मन का बंधन किसी में नहीं है। (३) प्रकाश। (४) तालाब। (५) नदी।

मल अरु मुत्र पृथ्वी पर पड़िया। वे वे मिलि मन अंदर भरिया॥
जब निरमली[1] कहूँ से पावे। होइ उजला जल मैल थिरावे॥

॥ दोहा॥

निरमल जल निर्मल करे, जल मलीन थिरियात।
जग ढूंढ़त ढूंढ़त रहे, पड़ी संत के हाथ॥

॥ चौपाई॥

ऐसा मैला जगत दिवाना। निरमली का नहि खोज पिछाना॥
वह निरमली सन्त के पासा। मिलै मेहर जब होइ खुलासा॥
निरमलि बिना मैल नहिं जाई। जो कोइ कोटिन करे उपाई॥
निरमलि नाम दया का होई। जो अंदर मल डारे धोई॥
दीन गरीबी भक्ति सुहावे। जब सतगुरु किरपा से पावे॥
नहिं तलास कोइ ढूंढ़नहारा। तनमन फैलि रहा जग सारा॥
अंदर मन में साँच न आवे। मन परदे कर बचन सुनावे॥
परदे आड़े आप कराई। गुरु को देवे दोस लगाई॥

॥ दोहा॥

गुरू बतावें पुरब को, चेला पच्छिम जाय।
अंदर टाटी कपट की, मिले जो क्योंकर आय॥
तन मन से साँचे रहे, अंदर मेल मिलाप।
साफ सुपेदी को करे, धोबी के परताप॥

॥ सोरठा॥

काग पढ़ाया पींजरे, पढ़ गया चारो बेद।
अंदर की छूटी नहीं, रहा ढेढ़[2] का ढेढ़॥

॥ चौपाई॥

यों ऐसा मैला मन भाई। कहो क्योंकर आवे सुधताई॥
काल अपरबल बाजी लाई। यह पाजी को मालुम नाहीं॥
अब याका परसंग सुनाऊँ। काल बली का छल दरसाऊँ॥
यहि कबीर के ग्रन्थन माहीं। भाखे आप कबीर गुसाईं॥

---

(१) एक बीज जिसे गँदले पानी में डालने से वह निर्मल हो जाता है। (२) कौवा।

संतन की यों साख सुनावे। बिना साख परतीत न आवे ॥

(मधुमकुंद सेठ के रूप में काल)

मधुमकुंद इक सेठ रहाई। घर में त्रिया और कोउ नाहीं ॥
खुद कबीर का चेला होई। द्वादस[1] और संग में सोई ॥
सँग कबीर कृपा नित राजे। तन मन सूरति चरन बिराजे ॥

॥ दोहा ॥

आठ पहर लागी रहे, सुरति कबीर के माहिं।
यों ऐसे सब संग महिं, काल किया छल दाँव ॥

॥ चौपाई ॥

जबही सेठ ने चोला छोड़ा। सूरति मन साहब से पोढ़ा ॥
सतगुरु सब्द कबीर कहाया। सूरति निरति मिलाप मिलाया॥
जहँ का माल जहाँ पहुँचाया। साहब कबीर ग्रन्थ में गाया ॥
जेहि पाछे इक भया तमासा। किया काल इक खेल बिलासा॥
धर्मदास को कबीर सुनावे। अचरज का लेखा समझावे ॥
सो मैं हिरदे तोहि सुनाऊँ। जैसी की तैसी समझाऊँ ॥
काल पवन का रूप बनाया। तिरिया का सिर आन घुमाया॥
बोला बचन नाम गोहराई। मैं मकुंद हूँ सेठ जनाई ॥

॥ दोहा ॥

जहाँ कबीर बैठे हते, द्वादस संगी पास।
खबर जाइ के यों कही, त्रिया सिर सेठ घुमाय ॥

॥ चौपाई ॥

द्वादस साथि संग में बोले। स्वामी यह तो सुनी अतोले[2] ॥

(कबीर बाच)

तब कबीर बोले मुख बानी। याका भेद कहूँ सब छानी ॥
बिरोध काल का हमसे परिया। नाम सेठ कहे सिर पर चढ़िया॥
काल भूत होइ त्रिया घुमावे। यों कबीर मत झूँठ कहावे ॥
द्वादस साथि समझ भरमावे। तौ इनके कोइ पास न आवे ॥

---

(१) कबीर साहब के बारह मुख्य चेले थे। (२) अचरजी बात।

मुक्ति द्वार को दीन्ह खुलाई । तौ संसार रहन नहिं पाई ॥
जीव अहार करूँ मैं मोरा । सो कबीर ने बंधन तोरा ॥

(तुलसीदास बाच)

हे हिरदे यहि काल जनाया । काल भूत तिरिया सिर आया॥

॥ दोहा ॥

सेठ गये निज धाम को, कीना काल प्रपंच ।
भूत रूप तिरिया छली, नहिं कबीर मत संच ॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे काल करी छल बाजी । कोइ कबीर से रहे न राजी ॥
ऐसे धरमदास से भाखी । कही कबीर ग्रन्थन में साखी ॥
सतसँग साँच होन नहिं पावे । यों छल करि करि काल जनावे॥
हे हिरदे सतसंगत माहीं । निहचै काल उपाधि उठाही ॥
जो भरमाय गये जम जाला । उनको खाय गया धर काला॥
वह उपद्र[1] केहि कारन करई । चारा मोर जीव अनुसरई ॥
मोरी छुद्या[2] कौन बुझावे । यह कबीर मत मोर नसावे ॥
जिन सतसंग रंग नहिं पाया । जिनके सदा काल उर छाया ॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे सुनु सम्बाद, काल दाँव ऐसा करे ।
सूरति देत घुमाय, जाय पड़े मुख काल के ॥

॥ दोहा ॥

ग्रन्थ पदमसागर महीं, कहि कबीर सम्बाद ।
धरमदास से कहत हैं, हिरदे तुलसीदास ॥

॥ चौपाई ॥

काग असज्जन की समझाई । यह तो सब मोरे मन आई ॥
बायस[3] पालिये अति अनुरागा । होय निरामिषि[4] कबहुँक[5] कागा॥
यह रामायन में चौपाई । हिरदे को दृस्टान्त सुनाई ॥

---

(१) उपद्रव, फसाद । (२) छुधा, भूख । (३) कौवा । (४) मांस आहार का त्यागी ।
(५) कभी ।

काल फाँस में कागा आवे। पंछी पकरि पारधी[1] लावे ॥
फंदा करि जिव घेरे आई। ज्यों नलनी का सुवना भाई ॥
जग यह यों अस काल फँदाना। ऐसे असज्जन का सरधाना ॥

(हिरदे बाच)

जब हिरदे इक पूछि प्रसंगा। स्वामी कहो हंस सतसंगा ॥
रहनि गहनि कहो बूझि बिचारा। हंसन के पद का निरवारा ॥

॥ दोहा ॥

हंसन की रहनी कहो, तन मन सुरति सुभाव।
काल बली के पेच से, कस कस निकरे जाय ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

हे हिरदे सज्जन गति न्यारी। करें भक्ति वे सुद्ध बिचारी ॥
मुक्ताहल[2] मोती चुनि खावे। मानसरोवर में सुख पावे ॥
त्रिकुटी माहिं चित्र चित सारी। सो वहँ जाइके दीपक बारी ॥
बिना तेल बिन बाती भाई। दीपक जरे रैन दिन माहीं ॥
चहुँदिसि फैलि रहा उँजियारा। तेज पुंज वह देस निहारा ॥
सो घर वहि हंसन का बासा। करें कुतूहल हंस हुलासा ॥
निसदिन प्रेम भक्ति अनुरागी। तद्यपि नाम बिमल बड़ भागी॥
आगे तोहिं परसंग सुनावा। हंसा बुन्द सिंध यों आवा ॥

॥ दोहा ॥

बुन्द सिंध हंसा मिले, निर्मल मुक्ति बिचार।
नर देही की अब कहूँ, सुनु यह हिरदे सिहार ॥

॥ चौपाई ॥

सूरा होवे रन के माहीं। भव डर कंप कधी नहि आई ॥
निद्रा रैन दिवस नहिं सोवे। जब देखो तब जागत जोवे ॥
कोइ बँदगी डंडवत करावे। सबके पहिले सीस नवावे ॥
भूखा कोइ देखा नहिं जाई। जब कछु देवे जीव जुड़ाई ॥

---

(१) शिकारी। (२) हंस।

दया सील संतोष अपारा । भक्ति अरु ज्ञान चले चौधारा ॥
बैठे बैठे में मरि जावे । देह छूटि फिर नर तन पावे ॥
प्रान छूटि निज घर में बासा । सुनु हिरदे यह भेद खुलासा ॥
नर नर का तन ऐसे पावे । जब कहूँ हिरदे लखन में आवे ॥

॥ सोरठा ॥

नहिं मूरख पतियात, ले जराय बाती दिया ।
हिये अंदर के माहिं, देखो जोइ निहारि के ॥

॥ चौपाई ॥

सतगुरु नाम सुरति की बाती । गैबी जोति जरे दिन राती ॥
हिरदे यह सज्जन की रीती । अंग असज्जन करे अनीती ॥
परखि प्रकृति का कहूँ सुभाऊ । कहि लच्छन उनके दरसाऊँ ॥
कूर कुभंडी लुच्चे नंगे । वे गँवार कहें बचन बिढंगे ॥
जो उनकी सोहबत सँग करई । नरक खानि जुग जुग लों परई ॥
मुख बोलै नहि बचन सँवारे । जैसे मेढक हंस बिचारे ॥
हंसन की हाँसी करवावे । काग सुभाव कभी नहिं जावे ॥

(मेढक हंस सम्बाद)

याका इक दृस्टांत सुनाई । मेढक रहे कूप के माहीं ॥
हंसा आय दिसंतर बाटे । बैठे जाय कूप के काठे ॥

(मेढक बाच)

मेढक ने पूछा को आही । आये कहाँ कौन हो भाई ॥

(हंस बाच)

हम हैं हंसा जाति गरीबा । कागा हमसे करे हरीफा[१] ॥
कागा मिले आप को हारे । जीतन की नहि गैल सिहारे ॥
हंसा हंस मिले सुख होई । बिमल बिलास करें मिलि दोई ॥

॥ सोरठा ॥

सुन मेढक यह रहस, देस हमारा दूर है ।
रहें दरियाव के पार, हंस नाम हमरो कहें ॥

---

(१) शरारत ।

(मेढक बाच)

वह दरियाव बड़ा कहो केता। कहाँ वह देस तहाँ तैं रहता ॥
चौपट चौड़ा केता पानी। सुनके समझ लेव सहदानी ॥

(हंस बाच)

जब हन्सा बोले अरे भाई। सिंधु अथाह कोइ थाह न पाई ॥
जल जोजन कहा कहूँ बताई। संख्या नाहिं असंख्या भाई ॥

(मेढक बाच)

तब छलाँग मेढक इक मारी। कहो समुद्र इतना है भारी ॥

(हंस बाच)

तब हन्सा बोले सुनि लीजे। सिंधु अथाह थाह कहा कीजे ॥

(मेढक बाच)

जब मेढक मन में रिसियाना। दे फलाँग दूजी अभिमाना ॥
कहे मेढक इतना है भाई। जो दरियाव रहे तैं जाई ॥

(हंस बाच)

जब हन्सा ने बचन उचारा। बिन जाने कहा कहे बिचारा ॥

(मेढक बाच)

तब छलाँग तीसर उन मारा। यासे कहा कहे अधिकारा[१] ॥

(हंस बाच)

कूप सिंधु कहा तटतर लावे। तोरी बुद्धि समझ नहिँ आवे ॥

(मेढक बाच)

मेढक के मन गुस्सा छूटा। तैं है लबार जक्त का झूँठा ॥
यासे कहा बड़ा बतलावे। तैं अंधे को नजर न आवे ॥
मेढक टेक आपनी राखा। हन्सा को झूँठा कहि भाखा ॥

॥ दोहा ॥

सज्जन और असज्जना, दोनों का प्रतिवाद।
हन्स हारि आपइ गये, मेढक अधम उपाध ॥
ज्यों अज्ञानी मनुख की, मेढक बुद्धि बिचार।
हार जीत माने नहीं, ज्यों मछ धीमर जार[२] ॥

---

(१) इससे विशेष क्या हो सकता है। (२) जैसे मछुआ के जाल में फँसी हुई मछली।

॥ छन्द ॥

मेढक अधम कहै हंस से, यह कूप से भारी कहा।
हंसा कहे दरियाव की गति, जन्म से हाँही रहा॥
दोनों में यह प्रतिबाद उत्तर, परसपर होता रहा।
कहि बात हंस न मानि मेढक, भूल में बादै बहा॥
हंसा सरोवर बास बस, जस दृगन से देखी कहा।
मेढक कुबुद्धी जाति मूरख, उमर भर देखा कुआ॥
वो सिंध को संधि समझ बिन, नहिं हंस की बातें सहा।
हिरदे कठिन मन मेढका, जड़ टेक में अपनी रहा॥

॥ सोरठा ॥

मेढक मूरख ज्ञान, हानि लाभ समझे नहीं।
हंस सिरोमनि आहि, जानि बूझि बरते नहीं॥

॥ चौपाई ॥

मेढक मन यह मनुष कहाया। संसै के भव-कूप रहाया॥
समुदर संत हंस जहँ बासा। मानसरोवर सदा निवासा॥
वह जड़ कहे कूप की बातें। सुरत समुंदर हंस समाते॥
इन उनका कहा बाक मिलापा। वे कहें और और इन थापा॥
मेढक मन बस जीव बिचारा। यह कहा जाने वार अरु पारा॥
भौजल कूप बंध में बासा। हंस सरोवर रहे खुलासा॥
हंस सीख जो मेढक माने। भव जल कूप परख जब जाने॥
मानसरोवर संधि लखावे। कूप भवन तजि हंस कहावे॥

॥ दोहा ॥

मेढक माने कहन को, हंस बचन बिस्वास।
आस कूप भव जल तजे, सरवर हंस निवास॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी इक बिस्मय जानी। हंसन की क्यों बात न मानी॥
मन बुधि में मेढक नहिं लावा। कहो स्वामी यह कौनि प्रभावा॥

संत परमारथ के सहुकारा[१] । कारज करज मुक्ति निरबारा ॥
यह नहिं लेत चेत चित लाई । कौन खोट कर्मन के माहीं ॥

(चेतावनी और उपदेश)

(तुलसीदास बाच)

भेख संत दोउ एक समाना । संत चीन्ह नहि परख पिछाना ॥
दोऊ को यह इक सम जाने । धनवंत निरधन परख न आने ॥
करज कंगाल से लेने चाले । लकड़ी बाँस बेचने वाले ॥
वह का देवे करज बिचारा । मिहनत करि करि पेट सँवारा ॥
साहूकार से लेन न आवे । नित निरधन से माँगन जावे ॥
आवे न हाथ टका इक भाई । मूरख वोहि की करत बड़ाई ॥

॥ दोहा ॥

निरधन से निस्चय करे, साहूकार से फेर ।
कहर[२] करे कधी कोप से, करत सुरति से बैर ॥

॥ चौपाई ॥

अंधा जग यह फिरत भुलाना । माँगे भेखन का नहिं जाना ॥
सतगुरु की कोइ गैल न पावे । सुरति सिख सतगुरु पै आवे ॥
ऐसा उनको कहा बिबेका । देखा सुना गुना न परेखा ॥
जो संतन की साख बिचारे । दृस्टि माहिं जब इस्ट निहारे ॥
इस्ट जानि के इस्क लगावे । तौ सुधि बुधि थोड़ी सी पावे ॥
उनकी कृपा दृस्टि है न्यारी । यह कहा जाने भेख अनारी ॥
जस जग रीति भेख के माहीं । भेख भिखारी जक्त कहाई ॥
ज्ञानी बड़े गाँठि नहिं पैसे । वे लखपती होइ हैं कैसे ॥

॥ दोहा ॥

लखपतियन की रोकड़ी, अँगड़े लैके जाय ।
साह दिसावर के बड़े, खाते जमा कराय ॥

॥ चौपाई ॥

माल अपूरब संतन केरा । सो जग कोइ पावे नहिं हेरा ॥

---

(१) साहूकार । (२) क्रोध ।

उनका रोकड़ माल खजाना । बीजक वह उनही का जाना ॥
माल सड़े नहि काई लागे । चोरै न चोर रैन दिन जागे ॥
कबहुँ न हाथ चढ़े केहु भाँती । खोदत रहे दिवस अरु राती ॥
यह दौलत दुनिया नहिं जाना । गुप्त भेद में माल छिपाना ॥
दया दीन दिल कूँची[1] पावे । मेहर नजर करि वे दरसावैं ॥
जो मूरख कोइ लेन बिचारे । जन्म जन्म पचि पचि के हारे ॥
जुगन जुगन कोउ अंत न पाया । धर धर मुए अनेकन काया ॥

॥ दोहा ॥

यह दौलत दरबार की, बकसीसी[2] के माहि ।
और तरह आवे नहीं, कोटिन जन्म सिराय[3] ॥

॥ चौपाई ॥

यह जग अंग संग में मतवारा । चावे विषय भोग अनुसारा ॥
इन्द्री सुख बहु भाँति सुहाई । मद के नसे छके रहे भाई ॥
रात दिवस सिर काल सिकारी । पकरि घेरि के मारि पछाड़ी ॥
जब कोइ कुटुँब काम नहिं आवे । जम जुलमी की जूती खावे ॥
दो दिन जग में देख तमासा । फूले फिरैं जक्त मन आसा ॥
कबहुँ न हार हिये में लावे । मूरख जन्म बाद यों जावै ॥
जब सुपना अपना करि चावै । अंत समय कोइ काम न आवै ॥
यों जग की यारी समझावा । मुए गये कोइ खोज न पावा ॥

॥ सोरठा ॥

गुललाला का फूल, छुवत हाथ मुरझात है ।
ज्यों ओला जल गाँठि, काँचे बर्तन नीर जस ॥

॥ चौपाई ॥

नर तन पाय किया का भाई । अंदर की नहिं अगिन बुझाई ॥
जुग जुग रहा खानि में भटका । काल कला कर्मन में लटका ॥
नर तन ले कहो का फल पाया । जाना जो जिन आप बनाया ॥

---

(१) कुंजी । (२) बख़्शिश । (३) बीत जाय ।

यह औसर भलि भाँति बिचारे। नहि यह जन्म वायदे[1] हारे॥
मन आपने बिबेक बसावे। बढ़ी घटी सब नजर में आवे॥
ज्ञानी रहे मगन मन माहीं। सुपने दुख सुख ब्यापे नाहीं॥
ज्ञानवंत नर परम अनंदा। भक्ति सिरोमन काटै फंदा॥
ज्ञानी का जीवन जग माहीं। रहे बिचार हिये लघुताई॥

॥ दोहा ॥

बाक[2] ज्ञान में निपुन है, अन्दर का नहि भेद।
उग्र[3] ज्ञान बिन भक्ति के, जुग जुग पावे खेद॥

॥ चौपाई ॥

संत बिना नहि कारज होई। या बिधि बात कहें सब कोई॥
जो संतन ने बचन उचारा। बिन सतसंग नहीं निरधारा[4]॥
ऐसे आगे साख पुकारे। साँच होय तन मन से हारे॥
दुर्गम घाटी काल कराला। बाँधी बाट जुलम जम जाला॥
सतगुरु तेग सुरति से काटे। निकरि जाय जुलमी की बाटे॥
तन मन सोधि रहे निरबाना। तब लख पावे पुरुष पुराना॥
जुग जुग से जिव चले अनेरा। काटा कधी न जम का घेरा॥
जन्म जन्म चौरासी माहीं। कबहुँ न सुरति संधि को पाई॥

॥ दोहा ॥

सुरति सब्द के भेद बिन, होय न पूरन काम।
चमर चाम की द्रस्टि में, तन तत तिमिर[5] समान॥

॥ चौपाई ॥

अंडज पिंडज उस्मज खाना। चौथे मनुष जन्म का जामा॥
यह सब बाक बचन बरतंता। यहि बिधि कही जुगन जुग संता॥
जिन नर तन में मूल बिसारा। कबहु न होय खानि निरबारा॥
उत्पति परलय में जिव जावे। फिरि फिरि जग जिव खानि समावे॥

---

(१) वायदा = वादा यानी इक़रार जो मालिक के भजन का जीव ने गर्भ में किया था। दूसरे तौर पर "बाद ही" भी हो सकता है जिसके मानी "बेफ़ायदा" के हैं। (२) बाच या ज़बानी। (३) प्रचंड, लच्छ। (४) स्थिरता। (५) अंधकार।

करनी करे भोग फल भाई। जोनी धर फल को भुगताई ॥
यह रहनी की बात बिचारा। यामें नहीं होय निरधारा[१] ॥
करनी करे कर्म की बाजी। इन्द्री सुख भोगन में राजी ॥
बिना सुरति नहिं संसय जाई। यह सतगुरु भाखें गोहराई ॥

॥ दोहा ॥

करतब तौ सब ने किया, जस जस जिनके भेद।
कर्म खेद छूटी नहीं, सूरति सब्द उमेद ॥

(हिरदे बाच)

॥ छन्द ॥

हिरदे अरज कहे साँच स्वामी, सब्द तो ऐसी कहे।
सत बचन बाक बिलास बोली, आस बिन ऐसे रहे ॥
कोइ सुरतवंत जो पंथ पावे, बिकट मारग को गहे।
इन्द्री सिथिल मन कैद करिके, जुगति थिरता की लहे ॥
ज्यों पेड़ पौद झकोर पवना, यों डगन मन की सहे।
जब सुरति सोधि उपाधि टारे, बाट मन की ना बहे ॥
धर नीलगिरि पर ध्यान निस्चल, सिखर पर सूरत रहे।
हिरदे बिना अस काज कीन्हे, मीन जल मछरी बहे ॥

॥ सोरठा ॥

सुन्दर[२] में स्रुति ध्यान, ज्ञान भक्ति बल्ली गहे।
करि केवट पहिचान, सतगुरु पार उतारिहैं ॥

॥ चौपाई ॥

यहि बिधि करे जीव निरबारा। भव जल से जब उतरे पारा ॥
यह ऐसे बिन कधी न होई। यहि बिधि संत कहें सब कोई॥
संत जुगन जुग कहते आये। कोई जीव ख्याल नहिं लाये ॥
भवसागर में नाव बतावें। जो कोइ उतरि पार को जावे ॥
परमारथ के संत सुखदाई। उनके हृदय दया रहे छाई ॥
वे पुकार करि कहें अवाजा। ज्यों मेघा बादर में गाजा ॥

(१) स्थिरता। (२) सुख का द्वार।

गरजे मेघ सुने सब कोई । अस कहैं गर्राज संत सब सोई ॥
जड़ता जीव जोनि के माहीं । उनके बचन कान नहिं लाईं ॥

॥ दोहा ॥

वे दयाल जुग जुग कहैं, बहिरा सुने न कान ।
ज्यों मतवाले मद पिये, छके नसे के माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

यों अस फिरे खुमारी माहीं । छके नैन मद कहा न जाई ॥
सब्द साख कहैं बचन पुकारे । यह मूरख मन में नहिं धारे ॥
ग्रन्थ बनाय कीन्ह यह काजा । डारे भाख अनेक समाजा ॥
नर तन यह यहि में कछुलावे । करि उपाव बुधि ज्ञान जगावे ॥
निरमल ज्ञान सिला जल धोवे । मैले से उजला यह होवे ॥
कई प्रकार की बानी बोले । यह अज्ञान गाँठि नहि खोले ॥
कहते कहते जन्म सिराना । एक न बात कान पर आना ॥
संतन की कछु खोर[1] न भाई । कहन कहैं सब कछु गोहराई ॥

॥ दोहा ॥

यह अज्ञानी पातकी, सुने न उनके बैन ।
कहन कान लावे नहीं, कहाँ मिले सुख चैन ॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे भटक भटक दुख पावे । चौरासी बंधन में आवे ।
राज रोग रोगी जिमि होई । वाको औषधि लगे न कोई ॥
ऐसे रोग रहे संसारा । कोइ औषधि नहि दर्द सिहारा ॥
संत हकीम दवा को देवें । निर्मल अंग आप करि लेवें ॥
बिना दाम की दवा बतावें । जीव सुखी करि रोग छुटावें ॥
यह कमबखत कहन नहि माने । भूत भवानी में मन आने ॥
करे पिसाच अरु पित्तर पूजा । सतसंग की कछु बात न बूझा ॥
कैसे भरम जीव को जावे । मैली बुधि नहिं ज्ञान समावे ॥

---

(१) क्रोध, सराप ।

॥ दोहा ॥

जुगन जुगन बंधन पड़े, कर्म काल के द्वार।
नर्क स्वर्ग की सुधि नहीं, दुख सुख बारम्बार ॥

॥ चौपाई ॥

ज्यों कूकर हड़काना[1] होई। मारे मार करे सब कोई ॥
जो घर को कोइ के पग धारे। दुरदुर करि के मारि निकारे ॥
ऐसे जीव भया हड़काया। आवागवन नाहिं सुख पाया ॥
उपजे मरे बहुरि तन पावे। फिरि फिरि आवागवन समावे ॥
चौरासी बासी बस होई। जनमे मरे काल मुख सोई ॥
ऐसे जनम अनेक सिराने। सतगुरु बाक बचन नहि माने ॥
खानिहि खानि जनम जुग धारे। बिन अधार फिरे मारे मारे ॥
अंत अधार कोई नहिं कीन्हा। बिना सार सन्मुख नहि चीन्हा ॥

॥ दोहा ॥

जो सन्मुख रहे संत के, अंत कहूँ नहिं जाय।
सूरति डोरी लौ लगे, जहँ को तहाँ समाय ॥

॥ चौपाई ॥

त्रियसुत मात पिता परिवारा। यह झूँठे इन बंधन डारा ॥
मोह जाल जग रह्यो बँधाई। ममता माया बिपति बसाई ॥
यह जम जाल घेरि घुन खाई। जैसे कीट काठ के माहीं ॥
घुन घुन खाय काठ को भाई। यों संसय सब जग घुन खाई ॥
रात दिवस कोइ चैन न पावे। संसय सुपने जाइ सतावे ॥
यह बंधन बिपता ने मारा। कैसे होइ जीव निरबारा ॥
जुगन जुगन परिपाटी[2] आई। यों जिव पड़ा भूल के माहीं ॥
ज्ञान बिबेक बचन नहिं बूझा। यों भया अंध आँख नहिं सूझा ॥

॥ दोहा ॥

आँखी में जाले पड़े, काढ़े कौन किनारि।
जब साथिया[3] नस्तर भरे, सुरति सलाई डारि ॥

---

(१) रोने वाला। (२) बंधेज, रीति। (३) जर्राह।

॥ चौपाई ॥

जब छूटें आँखी के जारे[1]। सुरति सलाई नैन निहारे ॥
सो कोइ यह सतगुरु से पावे। तिमिर नैन के तुरत छुड़ावे ॥
यों जग का छूटे अँधियारा। गुरु सूरज से होइ उबारा ॥
जो कोइ तिमिर नसाया चावे। गुरु चरनन पर सुरति लगावे ॥
सुरजमुखी पथरी की नाईं। सन्मुख लावत अगिन समाई ॥
जो चेला सतगुरु को चावे। गुरु प्रताप पद अगम लखावे ॥
जब बंधन टूटे जम फाँसी। जग आसा से रहे उदासी ॥
मन अनुराग बिषय सब त्यागे। राग रीति जग की सब भागे ॥

॥ दोहा ॥

सुंदर सुरति सुधारि के, गुरु चरनन करि ध्यान।
भान उदय नितही उगे, संत बचन परमान ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

चौरासी तजि नर तन थापा। यह सब संत चरन परतापा ॥
एक बचन मोरी अभिलाखा। सो सुनि हौं स्वामी मुख भाखा॥
फिरि नर तन का कहो बिचारा। जिन पाये जस जस निरबारा॥
नर निज रूप प्रकिर्ति बिचारा। कोइ कोइ आप अपन पौहारा ॥
कोइ सज्जन सुख सेज बिलासा। कोइ अपराधी बाँधी आसा ॥
यह इनका कहो भेद निबेरा। हिरदे दास चरन का चेरा ॥
जुग चारो कलु[2] मूल मलीना। नर तन धरे कलू[2] मतिहीना ॥
यासे मन संदेह उठावे। स्वामी बचन बोध मन आवे ॥
यह मोरी संदेह मिटावो। हिरदे को बिधिबिधि अर्थावो ॥

॥ सोरठा ॥

कठिन कलू की रीति, जीति सके नहिँ आपको।
मन इन्द्री संग प्रीति, हित अनहित गुन गाँठि में ॥

---

(१) जाला। (२) कलियुग।

(कलियुग में जीव की दुर्दशा)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

हे हिरदे यह अकथ कहानी । कहँ लग बरनन कहूँ बखानी ॥
नर कलु के मतिहीन अभागी । चाल चलें मन बिष अनुरागी ॥
अब याका बरतंत सुनाऊँ । मन तन बरन बास बतलाऊँ ॥
कोइ नर कर्मी कर्म करावे । जो कोई जैसे फल पावे ॥
कोइ नर ज्ञानवंत अनुरागी । नर तन सुफल भोग बड़भागी ॥
कोइ नर मुक्ति मनोहर पावे । नर तन में सो सुफल कहावे ॥
कोइ कोइ नर गुर गगन बिचारा । संत कृपा से आप सम्हारा ॥
कोइ नर कुटिल आप अपराधी । पड़े कुमति बस काल उपाधी ॥

॥ दोहा ॥

कलू काल की का कहूँ, नर नारी मतिहीन ।
दीन भाव दरसे नहीं, मैली बुद्धि मलीन ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे कलू परताप से, नर की नजर मैली भई ।
गुन द्रोह द्वंद बिकार मारग, दिवस निस बिष में रही ॥
इन्द्री अपरबल बास बस अस, प्रीति में फाँसी गई ।
जग लोभ मोह बिकार माया, ममत में लागी रही ॥
पोट बिष मद मान सिर पर, बाँध करि गठरी लई ।
जुग जुग करम के भोग काया, दुर्गति[1] दुख दीन्हा दई[2] ॥
कहुँ का बिपति यह जीव जड़ पर, जुलम जम की का कही ।
हिरदे हिरस[3] करि कोटि कर्मी, तुरत तन छूटै सही ॥

॥ दोहा ॥

कोटि कर्म करनी करे, जम जुलमी की दाढ़ ।
जो रे पड़े सो ना बचे, सब जिव डारे चाब[4] ॥

---

(१) दुर्गम, कठिन । (२) ईश्वर । (३) लालच । (४) चबा ।

(मरने के समय सुरत कैसे खिचती है—संत अपनी शरनागत सुरत की कैसे रचा करते हैं)

॥ चौपाई ॥

संत जीव की बिपति छुड़ावें। कर्मी जीव जक्त को चावें ॥
याको फल चौरासी माहीं। भिन्न भिन्न तोहि कहूँ सुनाई ॥
जब जिव निकरि देह दरसाऊँ। वोहि समय की समझ सुनाऊँ॥
निकरि जीव तन छूटे भाई। जब की बातें कहूँ बुझाई ॥
सिमटि अकास भास जब जावे। जब नाड़ी में सीत समावे ॥
जस रबि अस्त होय अँधियारा। प्रान पती तन धुक धुक धारा॥
जस रबि भास गये उजियासी। धुकधुक प्रान बसे तन बासी ॥
निकसे स्वाँस भासकुन[1] प्राना। येरे सिमटि कहो कहाँ समाना॥
जो वो ठाँव जौन से ठाइं। दसवाँ द्वार ब्रह्म के माहीं ॥
सूरज ब्रह्म द्वार दस माहीं। उनसे किरन अंड में आई ॥
किरन पाँचतत प्रान कहाया। ततमिलि पाँच अकास जगाया॥
आतम सब में भास प्रकासा। सोई भास किया तन बासा ॥
मारग भास जोई मग आया। तरक तालुवे राह समाया ॥
ज्यों प्रतिबिंब पड़े जल जाई[2]। ऐसे भास नाभ के माहीं ॥
नाभ तेज तन माहिं समाना। रोमहि रोम बदन में जाना ॥
भास तेज चेतन भइ काया। यह भीतर में बरनि बताया ॥
जिन घट सैल करी काया की। भीतर भेद कहे जोइ भाखी ॥
ऊपर की कहनी नहिं मानूँ। अंदर उदय होय घट भानू ॥

॥ दोहा ॥

अंदर भानु उदै बिना, भीतर की का कहेन।
बैन बचन झूँठे कहे, बिन अंदर नहिं ऐन[3] ॥

॥ चौपाई ॥

ब्रह्म जीव कुन प्रान कहाया। यह काया में भाखि बताया ॥

---

(१) किरन। (२) जैसे पानी में जाकर परछाईं पड़ती है। (३) आँख।

ठीक ठौर अरु ठाम ठिकाना । अंदर कोई परखि पहिचाना ॥
यह सब बैन बदन में भाखी । सुन करि साध देइँगे साखी ॥
निकरे प्रान बदन से जावे । जाहि समय की संत सुनावें ॥
जाका अब दृस्टांत सुनाऊँ । नकल माहि मैं असल दिखाऊँ॥
जैसे पतँग गगन चढ़ि जावे । डोरी देत देत बढ़ि जावे ॥
जब डोरी वह खैंचि खिलाड़ी । खैंचि डोरि भूमी पर डारी ॥
सिमटी डोरि किया उन पिंडा । यहि बिधि सुरति खिंचै ब्रह्मंडा॥
रोम रोम से तेज खिंचाना । सिमटि सिमटि नाभी में आना॥
नाभि तेज से भास उठाया । जब तन मद्ध तालुवे आया ॥
तालुवे से जब डोरि खिंचानी । जब तत पाँच अंड में आनी॥
खैंचै डोरि प्रान इँचि आवे । काल कान पर आसन लावे ॥
काल कान के मारग लाई । या बिधि तन के माहि समाई॥
जब वा डोरि को पकड़े जाई । संत सुरति की बैठक वाही ॥
वही सतगुरु की बैठक पासा । डोरि छाँड़ि होइ काल निरासा॥
प्रानी सतगुरु की सुधि लावे । डोरी छाँड़ि काल अलगावे ॥
जो सतगुरु सुधि बिसरे भाई । जबहि काल घर बजत बधाई॥
जिनके हृदय संत लौ लागी । सतगुरु साँच प्रीति अनुरागी ॥
जिनके काल निकट नहिं आवे । डोरि छाँड़ि के दूर परावे ॥
काल ठिकाने अपने आवे । सूरति में सूरति लिपटावे ॥
अपनी सुरति सुरति में डाली । ज्यों बंसी मच्छी खिंचि चाली॥
बंसी में मच्छी खिँचि आवे । ज्यों सतगुरु में सुरति समावे॥
सुरति डोरि पोढ़ मजबूती । जबहिँ काल सिर मारे जूती ॥

॥ दोहा ॥

सुरति डोरि सतगुरु गहे, रहे चरन के माहिँ ।
सुन्न सुरति सब्दै मिली, डोरी डोरि समाय ॥
काल रहा झख मारि के, गयो जो दावा चूक ।
निर्मल होइ आगे चले, कर्म काल मुख थूक ॥

॥ चौपाई ॥

जे सतगुरु सज्जन अनुरागी । संत चरन सूरति बड़भागी ॥
कहुँ उनका यह यों बरतंता । सूरति बसे सरन में संता ॥
जो कोइ ऐसी लगन लगावे । सो सूरति सतगुरु में आवे ॥
वार काल जहँ बसे ठिकाना । काल पार सतगुरु का थाना ॥
जेहि के मद्ध सुरति का बासा । सज्जन जो कोइ करे निवासा ॥
अष्ट कँवल पखड़ी दल माहीं । जो जेहि आस रहे जहँ जाईं ॥
काल स्याम के बीच रहाई । सेत सुरति सतगुरु की भाई ॥
बूझे यह कोइ समझ लखावे । याकी बूझ समझ कोइ पावे ॥
यामें जिव का लगे ठिकाना । यह मारग सज्जन का जाना ॥

॥ दोहा ॥

नैन स्याम और सेत के, मद्ध सुरत की लाग ।
जो जैसे सतगुरु मिले, तैसे तिन के भाग ॥

॥ चौपाई ॥

जो सूरति सतगुरु को चाही । जैसी डोरि ऊँट की नाईं ॥
जैसे ऊँट अगाड़ी जावे । सब कतार[1] पीछे चलि आवे ॥
बाँध डोरि पूँछि के माहीं । सब कतार पीछे चलि आईं ॥
सतगुरु सूरति मूल ठिकाने । ज्यों कतार जिव सुरति समाने ॥
जो सूरति सतगुरु दृढ़ लावे । सुनु हिरदे वह वही समावे ॥
यही भाँति से चले न दावा । और भाँति सब मार गिरावा ॥
तप संजम जोगी बहु पाले । ये मारग में भये बिहाले ॥
जो कोइ समझि करे यह लेखा । बिन सतगुरु नहिं मिले बिबेका ॥

॥ दोहा ॥

ज्यों कतार रहे ऊँट की, अगले ऊँट बँधाय ।
यों सूरति सतगुरु कहें, सब जिव वही समाय ॥

---

(१) पाँती ।

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

यह स्वामी सज्जन की बाता । यहि बिधि भाखे सभी सनाथा ॥
सब संतन की देखी बानी । सबने कही बिमल मति छानी ॥
अब वह मोको भेद बतावो । करमी जीव काल को दावो ॥
सज्जन का भाखा निरबारा । करमी जीव काल को जारा ॥
उनके प्रान कहाँ होइ जाई । कहो स्वामी मोहि बरनि सुनाई ॥
काल घाट रोके केहि द्वारे । सब जीवन को खाय बिडारे ॥
कौन राह से जीव नसावे । कैसे सकल जगत को खावे ॥
यह तन में केहि भाँति समावे । बदन बीच वह क्योंकर आवे ॥

॥ दोहा ॥

प्रान निकारे आय के, घेरे घट के माहिं ।
एक जीव बाचे नहीं, धरि धरि सब को खाय ॥

॥ चौपाई ॥

करता कौन जीव का होई । बिन जाने जग जाय बिगोई ॥
कहँ से आय कौन उपजाया । क्योंकर देह धरी जग काया ॥
पाँच तत्त तन रहा बँधाई । उपजि मरे चौरासी माहीं ॥
याको सब यह सबब सुनावो । स्वामी यह धोखा दरसावो ॥
पत मत हीन दीन हौं दासा । चरन कँवल की निसदिन आसा ॥
और आस बिस्वास न आवे । निस दिन सूरति चरन समावे ॥
ज्ञान बिबेक एक नहिं जानी । ऊपर चरन सुरति कुरबानी ॥
दिल दृढ़ मेहर सरन में होई । चित संसय मेटो प्रभु सोई ॥

॥ दोहा ॥

दिल दुबिधा मोरे भई, स्वामी सरन तुम्हार ।
जार जक्त कैसे पड़े, कैसे जीव उबार ॥

॥ चौपाई ॥

काल बली परचंड कहावे । यासे जीव बचन नहिं पावे ॥
छल बल दाँव करे कइ भाँती । करे कोप जिव पर दिनराती ॥

नहिं कोइ ठौर बचन जिव पावे। जहाँ जाय तहँ जाय समावे ॥
स्वर्ग मिर्त्त पाताल न बाचे। को है जबर सरन जेहिं याचे[1] ॥
भटकट फिरे जुगन के माहीं। कालबली से पार न पाईं ॥
यह कइ दाँव लगाये फंदा। कर्मी जीव जक्त का अंधा ॥
मारे जो जोरावर कोई। जबर संग कछु जोर न होई ॥
काल बड़ा बरियार कहावे। बिकट बिपति करि जीव सतावे ॥

॥ दोहा ॥

काल जबर जुलमी बड़ा, खड़ा रहे मैदान ॥
कर कमान खैंचे फिरे, मारे गोसा[2] तान ॥

॥ चौपाई ॥

ज्यों बन भेड़ी सिंघ अहारा। जैसे जीव काल का चारा ॥
डाके[3] सिंघ भेड़ के माहीं। ऐसे डाक काल जिव खाई ॥
यह स्वामी मोहिं कहो बुझाई। कौन चरित्तर काल कसाई ॥
या की कर[4] कूँची बतलावो। भिन्न भिन्न कहि करि समझावो॥
केहि बिधि जाय जीव को घेरे। केहि मारग से सूरति फेरे ॥

(जीव सत्य पुरुष की अंश)

(तुलसीदास बाच)

हे हिरदे तोहि आदि सुनाऊँ। जीव सुरति की संधि लखाऊँ॥
चौथे महल पुरुष इक स्वामी। जीव अंस वहि अन्तरजामी ॥
उनकी अंस जीव जग आया। करता पाँच तत्त में लाया ॥

॥ दोहा ॥

करता ने काया रची, जुग जुग जग बिस्तार।
सार दियो बिसराय के, घर घर करत पुकार ॥

(कर्म काया का संग)

॥ चौपाई ॥

पिंड प्रधान बसे तन माहीं। करता ने काया उपजाई ॥
बेद पुरान कर्म उपराजा। यासे करे जीव जग काजा ॥

---

(१) माँगे। (२) तीर की गाँसी या भाल। (३) दहाड़ता है। (४) कल।

करता करम किया बिस्तारा । लख चौरासी रूप सँवारा ॥
काल अपर्बल जाल पसारा । उन सब घेरि जीव को मारा ॥
कर्म कलंदर[1] आप नचावे । बाजी लाय जीव भटकावे ॥
कोइ बंधन से बाँधे भाई । ऐसे बन्ध अनेक लगाई ॥
कोई दाँव नहिं मारग पावे । धरि धरि देही जन्म सिरावे ॥
चौरासी से निकरि न पावे । बारबार वहि माहिं समावे ॥

॥ दोहा ॥

कर्म सारनी[2] बुधि बसी, सूरति रही अधीन ।
आसा के बस में पड़ी, बासा बिपति मलीन ॥

॥ चौपाई ॥

कर्म अपरबल भारी भोगू । सब जग जार जवर यह रोगू ॥
बिना कर्म कोइ काया नाहीं । जग बस रहा कर्म के माहीं ॥
काया बिना कर्म नहिं होई । कर्म बिना काया नहिं सोई ॥
यह अनादि से रचना भाई । जुगन जुगन ऐसे चलि आई ॥
कर्म भूत सब जग को लागा । यासे बची नहीं कोई जागा[3] ॥
कीट पतंग संग सब केरे । तीन लोक अंडा सब घेरे ॥
सात दीप नव खंड कहावे । चौदह लोक कर्म बस गावे ॥
चन्द्र सूर अरु दस औतारा । यह सब बँधे कर्म को जारा ॥

॥ दोहा ॥

अंड खंड ब्रह्मंड लों, लोक सकल जग जाल ।
काल कर्म सिर ऊपरे, जुग जुग फिरत बेहाल ॥

(काल के चरित्र)

॥ चौपाई ॥

अब यह काल चरित्र लखाऊँ । अंदर प्रान बसे जेहि ठाऊँ ॥
काया मद्धे काल सतावे । जब वह प्रान लेन को आवे ॥
सिमटत भास स्वाँस उठि जावे । प्रानपती जम सिमटि समावे ॥

---

(१) बंदर नचाने वाला । (२) कुटनी । (३) जगह ।

भास अकास तत्त में जाईं। तत्त अकास अंड[1] के माहीं ॥
जब यह कर्म कला उपजावे। बुद्धि सुरति को आन दबावे ॥
मैली बुद्धि सुरति के माहीं। वही समय में जाय समाई ॥
कर्म अनुसार बसे मन आसा। सूरति मन बुधि बंधन फाँसा ॥
सुनत अवाज स्याम सठ[2] गाँसा[3]। घेर घुमरि लावे जहँ स्वाँसा॥

॥ दोहा ॥

कर्म सारनी[4] बुधि बसै, आसा बास निदान।
यह नव द्वारा पिंड में, निकसि जाय ज्यों प्रान ॥

॥ चौपाई ॥

यह तो कर्म बुद्धि अनुसारा। अब सुनियो यह काल पसारा॥
अस्ट कँवल दल अन्दर माहीं। हाँ छिपि बैठा काल कसाई ॥
जब सब भास सिमटि करि आवे। जब सूरति पै बुधि पहुँचावे ॥
कँवल द्वार पखड़ी को रोके। उलटी सुरति काल मुख सोखे॥
काल दाढ़ में आन चबानी। जब ढरके नैनन से पानी ॥
लगे टकटकी दिखे न भाई। वाहि समय को करे सहाई ॥
जम के दूत घेर चहुँ फेरा। निकसे प्रान छोड़ करि डेरा ॥

(जहाँ आसा तहाँ बासा)

कर्म सारनी बुद्धि कहाई। जहँ भइ आस बास जेहिं माहीं॥

॥ दोहा ॥

कर्म आस की बास में, जोनी जोनि समाय।
जो जैसी करनी करे, सो तैसे फल खाय ॥

(नर्कों के दुख)

॥ चौपाई ॥

जम का जुलम जोर दरसाऊँ। मारग में जिव बिपति बताऊँ ॥
लोह के खंभ तपत के माहीं। जहाँ जीव को ले चिपटाई ॥
तड़फ तड़फ जिव जुलम दुखारी। तपत खंभ दुख उपजे भारी ॥

---

(१) सहसदल कँवल। (२) दुष्ट काल! (३) घेर कर पकड़ लेना। (४) कुटनी।

वाहि समय की कहा सुनाई। लोहा अगिन धमन[1] धौंकाई ॥
ज्यों धम्मन से धौंकि लुहारा। लोहा जो अगिनी में डारा ॥
ऐसे कस्ट जले जिव भाई। वही समय की बिपति बताई ॥
पाया भोग सोग सोइ जाना। छटपट करे जीव बिलखाना ॥
अब नर्कन का सुनो सुभावा। कर्मी जीव सहैं दुख दावा ॥

॥ दोहा ॥

कुंभी नर्क निदान यह, पड़े जीव जब जाय।
सिर समेत बूड़ा रहे, सदा नर्क के माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

जबहि नर्क सिर ऊपर काढ़े। जब ऊपर जूती जम मारे ॥
डूबा रहे नर्क के माहीं। सिर काढ़े जम मारे भाई ॥
कुम्भी नर्क कल्प लौं रहे बासा। मुख में नर्क नाक में स्वाँसा ॥
कई जुगन लौं रहे बिहाला। फिर अघोर नर्क लै डाला ॥
ह्वाँको कठिन भोग दुखदाई। तन सड़ि मरे उपजि वहि माहीं॥
निकसि न होय कधी निरबारा। गाढ़े बंध बँधे चौधारा ॥
पापी जीव अधम है सोई। करम भोग भुगते जो कोई ॥
करनी कीन्ह मलीन बनाई। जिन की दसा[2] भोग दरसाई ॥

॥ सोरठा ॥

नर्क अनेकन और हैं, कहँ लग करूँ बयान।
दुख भुगते यह जीव ज्यों जाने जो भोग समान ॥

(खानि योनि के कष्ट)

॥ चौपाई ॥

ये भुगताय बहुरि सुनु भाई। जोनी खानि जुलम दुखदाई ॥
खानि खानि का कहूँ निबेरा। लख चौरासी जीव बसेरा ॥
भवसागर जल भरा अथाही। अंडा जीव पड़े सब माहीं ॥
अंडा मद्धे जीव बिचारा। सो सब बहे चौरासी धारा ॥
धार धार का कहूँ बिबेका। तो लिखने नहिं लागै लेखा[3] ॥

(१) भाथी। (२) दशा, हालत। (३) हिसाब।

हे हिरदे यह अद्भुत बाता। लख पावे नहिं करम बिधाता॥
ब्रह्मा बासन गढ़े कुम्हारा। वोहु पुनि कर्म जोग अनुसारा॥
सिव जोगी भिच्छा में राजे। बिस्नु भोग बैकुंठ बिराजे॥

॥ दोहा ॥

करम भोग अनुराग में, माया का बिस्तार।
तीन त्रिया तीनों लई, कर्म जोग अनुसार॥

॥ चौपाई ॥

यहि बिधि जक्त चलाई बाटा। इन भुलाय दीन्हा घर घाटा॥
सब दुनिया मारग यहि लागी। भवसागर जिव भया अभागी॥
जग में जीव करै ब्योहारा। घटी बढ़ी कछु नाहिं सिहारा॥
आवागवन भया बिस्तारा। भवसागर यों जीव बिचारा॥

(संत छाप के एक जीव ने नर्क में पड़ कर सब नर्कियों का उद्धार कराया)

अब वह कथा कहूँ बिस्तारी। हिरदे सुनिये ज्ञान बिचारी॥
संत छाप जेहि जिव पै लागी। कोइ जिव भूल गया अनुरागी॥
कूसंगति से भूल समानी। जाकी कहूँ सुनो सहदानी॥
जो कदाचि नरक में जावे। संत जाय के जहाँ छुड़ावें॥

॥ दोहा ॥

साह असामी पै करज, जाय लेइ जहँ होय।
ऐसे संत सुभाव को, परख लीजिये सोय॥

॥ चौपाई ॥

मोहर छाप के काज सिधावें। नरक माहिं वे जीव जुड़ावें॥
अँगुठा बोरि नरक के माहीं। वहि ततछिन में नरक सुखाई॥
जोनी छूटि नरक से आवे। फिरि नर देही जोनि जुड़ावे॥
एक जीव कारन उपकारी। सब छूटे भये जीव सुखारी॥
अब नानक की साख सुनाऊँ। सोदर[१] पौड़ी[२] में समझाऊँ॥

(१) ग्रन्थ साहब के वह पद जिसके शुरू में "सोदर" का शब्द आता है।
(२) पद्य, नज़्म।

(संत की अनूठी दया)

॥ दोहा ॥

धन धन राजा जनक है, जिन सुमिरन किया बिबेक ।
एक घड़ी के सुमिरते, पापी तरे अनेक ॥
ऐसा सुमिरन जानि के, संतन पकड़ी टेक ।
नानक सुमिरन सार है, बिसरे घड़ी न एक ॥

॥ चौपाई ॥

नानक जाय अँगूठा बोरा । नरक जीव के बंधन तोड़ा ॥
ऐसी साख समझ कोइ बूझे । तिमिर जाय आँखी से सूझे ॥
साखी देन का कारन नाहीं । अंधे जीव भरम के माहीं ॥
जो बड़ भाग दया वे करईं । तो कदाचि बंधन निरबरई ॥
जुग जुग भूले जीव अनेका । दया भाव सतगुरु से ठेका ॥
संत दया की रीति नियारी । बार बार चरनन पर वारी ॥
जो कछु करें करें सोइ संता । संत बिना नहिं पावे पंथा ॥
सतगुरु जो जोइ राह बतावें । भूले को मारग दरसावें ॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल से, करम रेख मिटि जाय ।
मन तन सूरति साँच से, ज्यों का त्यों रहि जाय ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे अजब वोहि रीति घर की, संत से नाहीं बड़ी ।
जहँ लौं निगम कहे बाक बानी, सो सभी नीचे पड़ी ॥
आगे अगम बेअंत मारग, सुरति वहिं जा कर अड़ी ।
जहँ लोक लखन अलोक लखि कर, गगन पर सूरति चढ़ी ॥
तक सूर सन्मुख दृस्टि धरि कर, नेह निसाने पै गड़ी ।
सूरति सिखर के पार होइ कर, कँवल पखड़ी से कढ़ी ॥
चढ़ते पलक नहि बार उनको, निमख नहि लागे घड़ी ॥
छोड़े सकल सँग साथ सबको, फौज तजि पहुँची छड़ी ॥

सबको दिये छिटकाय करिके, सुरति सत मत से लड़ी ।
यहि भाँति साथ जड़ाव कुन्दन, नग अँगूठी ज्यों जड़ी ॥
अंदर अलख के पार पद में, पुरुष के आगे खड़ी ।
भयो मेल मिलन मिलाप पिव को, संत के सरने पड़ी ॥
सत पुरुष संत दयाल दिल ले, सुरति सज्जन की बड़ी ।
कैसे नरक दुख खानि में से, काढ़ि लें वोही घड़ी ॥
ऐसे पुकारें साख सब कहें, संत की बातें बड़ी ।
सब सुन स्रवन पर हाथ डारे, संत पट खोलें कड़ी ॥

॥ दोहा ॥

सन्त सरन जो जिव रहे, गहे जो उनकी बाँह ।
थाह बतावें समुद की, बल्ली भवजल माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे हिरदे संत सुभावा । भवजल पार लगावें थावा[१] ॥
जहाज सुरति उनकी नित चाले । समुदर पार भरावें माले ॥
भरती भरें सुरति की डोरी । पहुँचे पार जहाज को छोड़ी ॥
माल बिलायत में जो बेंचें । मेवा आनि[२] खरीदी खेंचें ॥
जम्बू दीप मुलुक के माहीं । खलक माल को चीन्हे नाहीं ॥
गली गली में ले दरसावें । मेवा ल्यौ जो जिनको चावै ॥
बार बार कहि कर गोहरावें । कोइ मेवा के पास न आवें ॥
देखे सुने समझ कर कहते । यह तो माल बड़ा कछु लेते ॥
भाव सुने पर मूड़ हिलावें । साँची मानि बहुरि नहिं आवें ॥

॥ दोहा ॥

तन मन से साँची कहैं, खरी खरी बतलान ।
पल्ले में डालैं जबै, खैंचै खूँट निदान[३] ॥

॥ चौपाई ॥

कदर बिना नहिं माल बिकाना । संत दिसावर बड़ी न जाना ॥

---

(१) थाह में । (२) ला कर । (३) जब उसके पल्ले में माल देने लगते हैं तो वह पल्ले का कोना खींच कर लेने से इनकार करता है ।

मेवा मोल खरीदी नाहीं। वह सवाद कहो क्योंकर पाई ॥
देखे सुने खाय मुख माहीं। सो कीमत को जाने भाई ॥
लिया दिया देखा नहिं आँखी। वह कहा परख कहेंगे भाखी ॥
यह संतन का माल अगूढ़ा। सो का जाने जग मन मूढ़ा ॥
यह तौ नाज खरीदा चावे। धर गठरी सिर ऊपर लावे ॥
धड़ा[1] पसेरी तोल पिछाने। यहि बिधि माल संत का जाने॥
गठरी बाँधि लेउँ सब सारी। यह जाने यों माल अनारी ॥

॥ दोहा ॥

संत मता दुरलभ कहैं, सतसँग में गोहराय।
बड़े बड़े हारे सभी, संतन की गति गाय ॥

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोले इक बानी। स्वामी बचन कहन पहिचानी॥
बचन अडोल बोल प्रिय लागा। मोको मिले पुरब बड़े भागा ॥
करनी कौन पुरबली रेखा। स्वामी को भरि नैनन देखा ॥
ऐसो कहा भाग भल मोरा। चरन माहिं चित रहे बहोरा ॥
हे स्वामी यह कहनि बखानी। तुम्हरी दया समझ में आनी ॥
को यह कहे अपूरब बाता। हिरदे चित बिस्मय[2] बिख्याता॥
बिस्मय दूर भर्म सब भागा। स्वामी चरन कँवल अनुरागा॥
एक बात मोरे मन आई। मेवा माल कहो समुझाई ॥

॥ दोहा ॥

संत समुंदर पार में, जहाज भरी दरियाव।
सो मेवा मो से कहो, संत खरीदैं जाय ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

हिरदे जग आँखी में जाला। उन कहा कहूँ प्रगट वह माला॥
अच्छर में बोली समझाई। जग ने बूझ मर्म नहिं पाई ॥
यह मेवा मैं वा समझाई। यहि में समझि लेव तुम भाई ॥

(१) दस सेर का बाट। (२) संदेह।

अच्छर माहिं अर्थ समझाया । जिन बूझा जिनने कछु पाया ॥
जो जाने यह भेद भलाई । कहँ कहुँ कृपा संत की छाई ॥
बानी बचन अपूरब बोली । जग में प्रगट नाहि हम खोली ॥
सज्जन सूर सुरति के नाका । सो समझे बोली यह भाखा ॥
देस देसंतर के हम बासी । दीपक दृग नैनन पर चासी[१] ॥
हिरदे हमरी जाति न पाँती । मैं कहा कहूँ बड़ा अपराधी ॥
यह अच्छर का लेखा लावे । कोइ सज्जन सत साध कहावे ॥

॥ दोहा ॥

सतसँग में मन नीच है, जिनके हिरदे हार ।
दीन गरीबी गवन से, बैठे मन को मार ॥

(भक्त के लक्षण)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे यह भक्त कहावे । दास भाव स्वामी को चावे ॥
भक्ति बड़ी खाँड़े की धारा । जो यह करे आप जिन मारा ॥
आपा को समझे नहि भाई । जिन यह भक्ति गरीबी पाई ॥
बिन सतसंग भक्ति नहि आवे । दास भाव मन नाहिं समावे ॥
यहि बिधि भक्ति करै मन लाई । जग स्वामी अज्ञा अस गाई ॥
सिर धरि उचित चले मन मोड़ी । मद मन मान बड़ाई तोड़ी ॥
सो सज्जन निज दास कहावे । यों सेवा सतगुरु की गावे ॥
छलबल साफ सुरति से तोले । यों सतगुरु की बानी बोले ॥

॥ दोहा ॥

छलबल से साँचा रहे, निर्मल बुद्धि बिचार ।
जब रँग मिले मजीठ को, सतगुरु पुरुष अपार ॥

(अभक्त के लक्षण)

॥ चौपाई ॥

अब यह अभक्तन की सुनु भाई । कपट भक्ति मन में चतुराई ॥
बगुला भक्त बड़े जग माहीं । बैठे जाय राह में जाई ॥

---

(१) जगाया ।

छाप तिलक कर माल सुहावे । गठरी काटन को मन चावे ॥
परदेसी निज बास निवासी । डारे जाय गले में फाँसी ॥
मीठे मधुर दीन लघुताई । यह लच्छन उनके हैं भाई ॥
और अभक्त अधम अरथाऊँ । मन में कुटिल प्रीति परभाऊ ॥
मैल अँदर मुख मीठा बोले । भीतर कपट गाँठि नहिं खोले ॥
अंदर पाप बसे मन माहीं । ऊपर भक्ति भाव दरसाई ॥

॥ दोहा ॥

बड़े भक्त जग में बजैं, मँजैं[1] न मन का मैल ।
खेल खिलाड़ी काल के, फँसे गुमर[2] की गैल ॥

॥ चौपाई ॥

हे हिरदे वे अधम कहाई । जुग जुग पड़े नर्क के माहीं ॥
कोई न उनका काढ़नहारा । कीन्हे कर्म अनीत अपारा ॥
जन्म धरे कइ नाहि जुड़ावे । कर्म बली त्रय ताप तपावे ॥
कीट पतंग जोनि जिन पाई । भोग भुगति अपनी अधमाई ॥
कहँ लग कहूँ कर्म की रेखा । जो कछु कीन्ह लीन्ह सोइ लेखा ॥
बंधन कर्म आप अपनावे । औरन को कहि दोष लगावे ॥
यह हिरदे जिव बड़ा अभागी । खरी छाँड़ि खोटी अनुरागी ॥
दुर्लभ तन नर देही पाई । जीवन तुच्छ जक्त के माहीं ॥

॥ दोहा ॥

घड़ी घड़ी स्वासा घटे, आसा अंग बिलाय ।
चाह चमारी चूहड़ी[3], धरि धरि सब को खाय ॥

[चेतावनी]

आसा अमृत सब ने जानी । यों ऐसे चौरासी खानी ॥
स्वासा निकरि पलक में जावे । यह आसा करि कर्म बँधावे ॥
तन का नाहिं भरोसा भाई । पलक माहिं यह जाय बिलाई ॥
पड़ि बुल्ला फूटे जल माहीं । छिन में तन छूटे यों भाई ॥

---

(१) माँजैं । (२) गुमराही, भूल । (३) भंगिन ।

महल मुलुक और माल खजीना[1] । संग नहिं जाय परखि परबीना ॥
जीव निकरि तन जाय जरावे । जब तेरे कछु संग न जावे ॥
यह यों अंध धुंध चलि आई । यह तेरे कोइ संग न जाई ॥
हाय हाय करि जन्म बिताया । नहिं कोइ तेरे कारज आया ॥

॥ दोहा ॥

हाय हाय करि पचि मरे, कुटुम्ब काज अज्ञान ।
मान बड़ाई जक्त की, डूबे करि अभिमान ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे करम जग जाल में, जिव अधम की आसा बढ़ी ।
परले पलक में होय तन मन, मौत सिर ऊपर खड़ी ॥
दिन चारि जग में जीवना, जिव स्वास की बीते घड़ी ।
चेतन बदन में बास बिन, फिर रहेगी काया पड़ी ॥
काया किला गढ़ फूँकि जब, जमराय की फौजें चढ़ीं ।
अंधा धुंध दल प्रबल वाके, सामने कहो को लड़ी ॥
भीतर बुरज के सुरँग लागे, पलक में टूटे गढ़ी ।
हिरदे बड़े रन खेत में, कई सूर की लोथें सड़ीं ॥

॥ सोरठा ॥

जम यह जबर कराल, काल जुलम जुलमी बड़ा ।
खड़ा रहे मैदान, जान कोई पावे नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

ऐसा घेरा जम ने डारा । सब जिव पकड़ि घेर करि मारा ॥
जम की जाल बड़ी दुखदाई । नहिं कोइ छोड़े काल कसाई ॥
जीव अंध फँद माहिं फँदाना । भूला जीव जन्म से जाना ॥
बधन न वा को बौराया । मोर तोर में जन्म गँवाया ॥
आस अपरबल सबसे भारी । यों कहा जाने भेद अनाड़ी ॥

---

(१) खजाना ।

ममता ने चित चाट लगाई। अपने घर की बाट भुलाई ॥
सतसंग सुना न सतगुरु पाया। यासे भेद हाथ नहिं आया ॥
जन्म मरन दुखिया में दौड़ा। नाँगे फिरे पाँव नहि जोड़ा[१] ॥

॥ दोहा ॥

जुलमी की जाली पड़े, बड़े बड़े उमराव।
दाँव कधी लागे नहीं, भागन कवन उपाव ॥

(काल कराल)

॥ चौपाई ॥

खेले जुगजुग काल सिकारी। खाये जक्त जीव सब सारी ॥
को रोके जबरी के माहीं। आड़े[२] फिरें सामरथ नाहीं ॥
सतगुरु से डरपत है भाई। कछू और न चले उपाई ॥
जिव मूरख वो[३] जबर कहावा। याको कछू चले नहिं दाँवा ॥
कई परपंच करे जम काला। यासे बपुरा[४] जीव बिहाला ॥
कोई उपाव से बाचे नाहीं। सतगुरु सरन बिना कोइ भाई॥
उन बिन फंद कटन को नाहीं। जो कोइ कोटिन करे उपाई ॥
मारग रोक बाट में बैठा। सन्मुख होइ को खावे खेटा[५] ॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु के टारे टरे, और न माने एक।
भेष टेक करि करि मुए, करि दरियाप[६] दिल देख ॥

॥ चौपाई ॥

सब जिव सौंपि पुरुष यहि दीन्हा। तीन लोक का मालिक कीन्हा॥
जो चाहे सो करे अनीता। यहि के सन्मुख कोइ नहिं जीता ॥
जबरी जोर अपरबल भाई। संत बिना कोइ पार न पाई ॥
नाक छेर जो नाग नचावे। ऐसे करि काबू में आवे[७] ॥

---

(१) जूता। (२) छिपते। (३) काल। (४) निर्बल। (५) सोंटा—"खेटक" नाम बलराम जी के हथियार का है। (६) दरियाफ्त=खोज और जाँच। (७) जैसे श्रीकृष्ण ने काली नाग को नाथ के नचाया था वैसे संत काल को परास्त करते हैं।

(सात्विकी और दीन रहनी के गुन)

यह संतन से बनै बिचारा। उन अपना कारज यों सारा ॥
जग आसा सबही बिसराया। जब यह उनके काबू आया ॥
सब रस भोग खान अरु पाना। इन्द्री सुख सबको बिसराना ॥
मेवा मट्टी एक समाना। मोठ[१] मिठाई सम करि जाना ॥

॥ दोहा ॥

सहज भाव से जो कछू, आवे अमृत भाव।
यह सुभाव भीतर बसे, जब कछु चले न दाँव ॥

॥ चौपाई ॥

रूखी रोटी साग अलोना। बहुत प्रेम से पावे दूना ॥
उनके मन ऐसो उपजावे। जब वह उनके काबू आवे ॥
यहि बिधि और करे जो कोई। सो चीन्हे मन बिरला वोही ॥
और बात कोइ बाट न पावे। मन की कला हाथ नहिं आवे ॥
सतगुरु सूर मेहर गति न्यारी। वे चाहें तो लेहिं उबारी ॥
और उपाय एक नहिं लागा। भटकत खोज फिरे कइ जागा ॥
यह बिषई मन मान बड़ाई। हिरदे कपट कुमति मतिमाहीं ॥
मन्द मतिमंद अंध है आँखी। मन की तरंग रहे नहिं राखी ॥

॥ दोहा ॥

मन तरंग तन में चले, आठो पहर उपाव।
थाह कधी पावे नहीं, छिनछिन छल परभाव ॥

॥ चौपाई ॥

छल बल दाँव लगे नहिं हाथा। फोड़ै सिर कितने केइ भाँता ॥
जब सतगुरु की मेहर मँझावे[२]। उनकी दया रमज कछु पावे ॥
और भाँति कोइ करे उपाऊ। सुपने उनका मिलै न थाऊ[३] ॥
ज्ञान जोग बैराग बिधी से। और तने[४] नहि मारग दीसे ॥
वे अंदर घट लेइँ पिछानी। बोली में परखें सब बानी ॥
चाल चलन सब भाँति बिचारें। जब जेहि जीव को कारज सारें ॥

---

(१) तीत। (२) हेरै, खोजै। (३) थाह, पता। (४) तरह।

दीन लीन सब भाँति निहारें। जेहि जिव का अंकुर बिस्तारें ॥
रहनि गहनि से देखें भाई। सुधि साँचे परखें सब ठाईं ॥
यों सब भाँति लखें परबीना। जब वाको दरसावें चीन्हा ॥
उजली बुद्धि मलीन नसावे। जब मन को सुधताई आवे ॥
जग में रहे मरे मन भाई। जग इच्छा सब देइ उड़ाई ॥
मुरदा बोल बने मति हीना। जग बिरोध खुस आप अधीना ॥
मार मार सब जग गोहरावे। जब लालों की लाली पावे ॥
काला मुख मन मौज उड़ावे। जब दयाल की मेहर बसावे ॥
उनकी कृपा दृस्टि है न्यारी। वे चाहें जब लेइँ उबारी ॥
दीन जानि कोइ सरनै आवे। चरन कँवल चित सुद्ध बसावे ॥
चीन्हे बचन संत के जोई। सिर ऊपर धरि लेवे सोई ॥
उनको बड़े जानि मन माने। जब उनका उपदेस पिछाने ॥

॥ दोहा ॥

उपदेसी वहि देस के, भेष भवन के पार।
सार समझ सुलटी कहें, जग करि उलटि बिचार ॥

(भेष, पंडित, बाचक ज्ञानी इत्यादि)

॥ चौपाई ॥

जो बानी मुख से उन गाई। कोई समझ न मन में लाई ॥
बाम्हन ने रुजगार बिचारा। घर घर कथा कीन्ह बिस्तारा ॥
बाँचत फिरे करे रुजगारा। उद्र काज उन पेट सम्हारा ॥
बानी का कछु मर्म न पाया। बाँचि बचन जग को उरझाया ॥
परमारथ पर दृस्टि न डारी। बोल अमोल न बात बिचारी ॥
संत बचन सब कहैं अतोला। बानी में कोइ सार न खोला ॥
भेख टेक में रहे भुलाई। संत बचन की संधि न पाई ॥
पूजा आप करावे अपनी। रात दिवस माला को जपनी ॥
वह भी यहि मारग में भूला। केहि बिधि पावे सार अतूला ॥

॥ दोहा ॥

पोथी पढ़ने में लगे, चढ़ा ज्ञान का मान।
सभा माहिं मोटे भये, गुन के संग गुमान ॥

॥ चौपाई ॥

सार असार न चीन्हा भाई। गुन के ज्ञान चढ़ी गुरुवाई ॥
सन्त सार नहिं बानी बूझी। गुन की गैल आँख नहिं सूझी॥
गुनी भये बहु जक्त रिझाया। बादइ जग में जन्म गँवाया ॥
ज्यों बिस्वा[1] पैसे से राजी। या बिधि बुद्धि सभी उपराजी॥
जल बिन मीन भई बेहाला। ज्यों पैसे डाली जग जाला ॥
ज्ञानी गुनी कबेसुर होई। पंडित और भेष सब कोई ॥
माया ने चेरा करि राखा। समझे कहा संत की भाखा ॥
ज्यों रवि अस्त होय अँधियारा। ज्यों जग हृदय तिमिर भया सारा॥
बिन अंजन नहि नैनन सूझे। सतगुरु बचन कौन बिधि बूझे ॥
गुरु दयाल से अंजन पावे। जब कहुँ तिमिर आँखि से जावे॥
दीन होय बिन पावे नाहीं। संत बिना नहिं तिमिर नसाईं ॥
और दवा कोइ काम न आवे। सतगुरु चरन सदा लौ लावे ॥

॥ दोहा ॥

और आस बिस्वास की, झूँठी है सब बात।
हाथ कछू आवे नहीं, जम धरि मारे लात ॥

॥ छंद ॥

ज्ञानी कबेसुर पंडिता, सब बाँच करि पोथी पढ़े।
कोइ अर्थ बात बिबेक पूछे, तुरत ही उनसे लड़े ॥
बड़े ज्ञानवंत महंत मोटे, मान मुख बातें कढ़े।
सतगुरु अगम पुर पार पद की, बात नहिं हिरदे गड़े ॥
केइ भाँति संत पुकार बोलें, तोल बिन चित ना चढ़े।
गफलत पड़ी सब देस दुनिया, समझि कोइ सूरे अड़े ॥

---

(१) कसबी।

सज्जन सुरति के रंग राचे, कर्म काँचे से कढ़े।
अपने रहे उनमान से, नहि मान सेवा इक कढ़े॥

॥ दोहा ॥

हिरदे जो जन असल है, नकल कधी नहिं होय।
कूसंगति के गुन गहै, नकल कहावै सोय॥

॥ चौपाई ॥

असली अपनी आदि न छोड़े। करि बिबेक बंधन को तोड़े॥

(असली)

(तेजी[1] घोड़े का दृष्टांत)

॥ चौपाई ॥

अब याकी इक नकल दिखाऊँ। नकल माहिं असली दरसाऊँ॥
कारवान सौदागर आया। घोड़े खरीद बहुत से लाया॥
कीन्हा सहर से बाहर डेरा। फजर[2] जाय घोड़े को फेरा॥
लोग सहर के देखन आये। तेजी गुन चित माहिं समाये॥
कहो सौदागर कीमत भाई। कोइ कहिकर अस बचन सुनाई॥
तब सौदागर बोला भाई। सवा लाख कीमत फरमाई॥
सहर माहिं कोइ का लै जाने। कीमत सुन करि होस हिराने॥

॥ दोहा ॥

तेजी[3] घोड़ा असल की, क्योंकर करूँ बखान।
चलै पछैयाँ पवन ज्यों, ऐसा तुरी निदान॥

॥ चौपाई ॥

यह भनकार राज पै आई। राजा के कोइ कान सुनाई॥
घोड़ा एक अपूरब आया। तेजी अस कहि नाम सुनाया॥
जब राजा बोले अस भाई। लावो वह सौदागर जाई॥
हलकारे को हुकम सुनाया। सुन सौदागर पै चलि आया॥
घोड़े सुधाँ[4] चलो तुम भाई। राजा का यह हुकम बजाई॥
सुनि सौदागर घोड़ा लीन्हा। राजा सन्मुख घोड़ा कीन्हा॥

(१) घोड़े की एक नसल का नाम। (२) तड़के। (३) ताजी ? (४) समेत।

घोड़े को देखत भये राजी। कहो कीमत सच सच उपराजी॥
जब सौदागर बोले बैना। सवा लाख कीमत का कहना॥

॥ दोहा ॥

सौदागर से पूछि कर, राजा खामुस[1] खाय।
मुख से बोले कछु नहीं, मन ही मन मुसकाय॥

॥ चौपाई ॥

जब राजा ने बात बिचारी। सौदागर यह अहै अनारी॥
करोड़ रुपै कीमत का घोड़ा। इनने मोल बताया थोड़ा॥
जब ऊपर से पाखर मोड़ा। काना एक आँख से घोड़ा॥
राजा तो घोड़े से राजी। लेना याहि बुद्धि उपराजी॥
दिये दाम सौदागर माँगे। घोड़ा भीतर भूमि उलाँगे॥
घोड़े को बाँधा घुड़साला। कइ खिजमत के करनेवाला॥
मक्खी तन पर लगन न पावे। घोड़े ऊपर चँवर डोलावे॥
जब सिकार राजा जी जावे। काने को लावो गोहरावे॥
जब जब राय सिकारै जावे। काना कहि अस बचन सुनावे॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराना। सुनि घोड़ा मन में रिसियाना॥
राजा मूरख बूझि न बाता। तेजी असल न जानी जाता॥
मैं तेजी की असल न जाने। काना मुख से भाखि बखाने॥
जब घोड़ा मन में घबराना। काना मुख से कहै बखाना॥
घोड़ा सुने बहुत दुख पावे। अब याका का करूँ उपावे॥
बोल राय के कैसे लागे। ज्यों अगिनी हियरे में दागे॥
बहु घबराय कहे वो घोड़ा। रन पड़े कहूँ राय से तोड़ा॥
ऐसी मन में बात बिचारूँ। राजा को कोइ छल से मारूँ॥
एक दिवस ऐसा भया भाई। पड़ि चकरी[2] कोइ फौजे आई॥
भया बिगाड़ सहर में भाई। राजा की फौजें चढ़ि आई॥
आमें सामें[3] लगी लड़ाई। बहु रन खेत भया वहँ आई॥

(१) चुप। (२) चारों ओर से घेरा डाले हुए। (३) आमने सामने।

बहुत दिनन से बात बिचारूँ। लगा दाँव अब राजा मारूँ ॥
घोड़ा लाय सवारी कीन्हा। फेरा राय गरम करि लीन्हा ॥
फेर फार कर एड़ चलाई। जब पहुँचा रन भीतर जाई ॥
घोड़ा वही याद करि लयऊ। रन भीतर जाकर अड़ि गयऊ॥
बहु सवार राजा ले घेरा। घोड़ा अड़ा फिरे नहि फेरा ॥
वह फौजन का कहे सिरदारा। तेजी का मारो असवारा ॥
तब तेजी मन किया बिचारा। मारा जाय मोर असवारा ॥
तेजी कुल पै गारी[१] लाऊँ। राजा के बोलन पै जाऊँ ॥
तेजी कुल को नाम धराऊँ। राजा की मन बात बसाऊँ ॥
यह बिचार मन घोड़ा कीन्हा। तुरत बचाय राय को लीन्हा ॥
जो कोइ असल कुलन के भारी। मन में लेवें बात बिचारी ॥
असली जो कोइ असल बिचारे। नकली नकल माहि चित धारे॥
नकली न्यारी नकल चलावे। असली का वह मर्म न पावे ॥
नकली असली अंतर भाई। हिरदे तो को बरनि न जाई ॥

॥ दोहा ॥

असली असल जनाइया, घोड़े का दृस्टांत।
राजा मूरख नकल यह, भाखि बरनि बरतांत ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोला इक बाता। असली की भाखी बिख्याता ॥
हे स्वामी इक और बतावो। नकली की कहि कर समझावो ॥

(नकली)

(तुलसीदास बाच)

नकल नीच की असल निनारी। मन मलीन बुधि सकल सिहारी ॥
संकर बरन[२] यह वही कहावें। सासतर में उनको यों गावें ॥

(१) कलंक। (२) बर्णसंकर = दोग़ला।

सज्जन से वे प्रेम छुटावें। नीचे से नीचा मन लावें ॥
नीच नीच की मसलत[1] मीठी। ऊँची अकल एक नहिं डीठी ॥
ऐसे अधम नर्कपुर गामी। नहिं समझें कोइ सेवक स्वामी ॥
गुरुद्रोही पातक के मारे। हिरदे अपना जन्म बिगारे ॥

॥ दोहा ॥

जनमें नकली जन्म से, जुगल बाप के पूत।
माता की कीमत वही, सज्जन से नहिं सूत ॥

॥ चौपाई ॥

धोबी कपड़े का मल धोवे। नकल नीच सज्जन मल खोवे ॥
ऐसे धोबी पास बसावे। अधरम पाप धोवाया चावे ॥
खोटे करम करे कुटिलाई। मुख देखन के जोग न भाई ॥
अकल अनीत रीति नहिं जाना। वे भरमें चौरासी खाना ॥
गुरु निंदा संतन की करई। नहिं अज्ञान अधम निस्तरई ॥
सुनु हिरदे यह काग सुभावे। भिस्टा[2] की बैठक वे चावे ॥
मिसरी मेवा कधी न खावे। हरदम हिरस वही चित चावे ॥
करम जोग करनी की खूबी। उनकी नाव बीच में डूबी ॥

॥ दोहा ॥

संतन की निंदा करे, नानक कहत पुकार।
संत की निंदक नानका, बहुरि बहुरि अवतार ॥

॥ चौपाई ॥

यह नानक मुख गाये साखी। ऐसे सबही संतन भाखी ॥
संत द्रोह सुख कधी न पावे। नहिं मुख अपने कछु फुरमावे ॥
अपने कर्म आप सिर बाँधे। नकली बुधि अपनी नहि छाँड़े ॥
कुकरमी नर यही कहावे। संतन की निंदा जेहि भावे ॥
गुरु से कपट साध से चोरी। की होय निरधन की होय कोढ़ी ॥
ऐसे अगली साख पुकारै। जिनको नीक लगै सोइ धारै ॥

---

(१) सलाह। (२) बिष्ठा, ग़लीज़।

संत अभाव करे जो कोई। जिनकी करम रेख जस जोई ॥
नारद ने गुरु धीमर[1] कीन्हा। कर अभाव गुरु नरकहिं लीन्हा ॥
फिर उनसे उन नरक छुड़ाया। फिर उनकी सरनागति आया ॥
कागज पर लिख दी चौरासी। लोटत छूटि गई जम फाँसी ॥
यों पुरान कहि कर गोहरावे। गुरु निंदक सुख कभी न पावे ॥
अपनी नीच नकल दरसावे। हम चतुराई ऐसी चावे ॥

॥ दोहा ॥

नीच निचाई ना तजे, औगुन करे गुलाम।
काम पड़े पर फिरि खुले, खोटे खोटे दाम ॥

॥ चौपाई ॥

खोटे में खोटा मिलि जावे। खरे खरे की राह चिन्हावे ॥
अपनी खोट मोट करि जाने। खरे खराई नहिं पहिचाने ॥
ख़ोटे में खोटा है राजी। यहि बिधि बूड़े मूरख पाजी ॥
उनको अकल कौन अर्थावे। ये गोते अपने से खावें ॥
उनको बल्ली नाव न बेड़ा। उनका होय न कधी निबेड़ा ॥
सज्जन की संगति सुख पावे। दुरजन में दूना दुख आवे ॥
अपनी अपनी रीति मिलापा। जैसे को तैसा मिलि थापा ॥
अपनी अपनी चाल चिन्हाई। जैसी गति जैसे ने पाई ॥

---

(१) कथा है कि भगवान ने नारद से कहा कि गुरू धारन करो बिना इसके काम न सरेगा। नारद ने पूछा किसको गुरू बनाऊँ। जवाब मिला कि जो पहिले रास्ते में भेंटे। नारद वहाँ से चले तो एक मल्लाह मिला और उसी को गुरू बनाना पड़ा। जब भगवान के पास लौट कर आये भगवान ने पूछा कि कहो गुरू मिला। नारद ने ग्लानि से जवाब दिया कि हाँ एक मल्लाह जो पहिले मिला उसी को आपकी शिक्षा अनुसार गुरू बना लिया। भगवान बोले तुमने अपने गुरू की निरादर से चर्चा की इससे चौरासी के भागी हुए। यह सुनकर नारद घबराये और प्रार्थना की कि महाराज किस तरह चौरासी से बचूँ। भगवान ने उत्तर दिया कि जाकर अपने गुरू से दीनता करो और उनकी शरन पड़ो। नारद ने ऐसा ही किया जिस पर उनके गुरू मल्लाह ने उनको यह जुगत बताई कि एक पत्र पर हरि से चौरासी लिखवा कर उसी पर खूब लोटो तो चौरासी कट जायगी। इस प्रकार करने से नारद चौरासी से बचे।

॥ दोहा ॥

जैसे को तैसा मिले, जैसी कहे बनाय।
वह उनकी बिधि यों मिले, एक ठिकाने जाय॥

॥ चौपाई ॥

वे अपनी करनी फल पावें। बोवें लुनें[1] वही वो खावें॥
असल जीव की करनी न्यारी। वे बोलेंगे बात बिचारी॥
असली कुल अपने पै जावे। नकली कुल को दाग लगावे॥
बहुरुपिया कइ रूप बनावे। भाँड़ बने पै नकल दिखावे॥
असल जीव से नकल न होई। नकली नकल बनावे सोई॥
नकली असली का यह लेखा। पुरब[2] कर्म जिनकी जेहि रेखा॥
जो निज निज जिनकी करतूती। बुधि अनुसार संग मजबूती॥
जल में कँवल जोंक इकसंगा। उपजे गुन अप अपने अंगा॥

॥ दोहा ॥

जोंक रुधिर को पियत है, जो कोइ जल में जाय॥
कँवल रबी[3] देखत खिले, ऐसे अंग सुभाय॥

॥ चौपाई ॥

कँवल जोंक उपजे इक ठाईं। न्यारे न्यारे गुन बिलगाईं॥
अब हिरदे सुनु और सुनाऊँ। साध असाध उभै[4] गति गाऊँ॥

(साध के लच्छन)

साध वोही जो सब कछु साधे। नहिं अनुमान बिरत अनुरागे॥
संजम बिना साध नहिं होई। बिन साधे साधू नहिं सोई॥
स्वाल करे नहिं मुख से माँगे। बैठे रहे नाहिं इक जागे[5]॥
गदला पानी बंधन सोई। बहता सदा निर्मला होई॥
जग की आस कबहुँ नहिं राखे। सतगुरु बानी को नित भाखे॥
खाय पिये पल्ले नहिं बाँधे। पैसा न पोट उठावे काँधे॥

---

(१) काटें। (२) अगले। (३) सूरज। (४) दोनों की। (५) जगह।

॥ दोहा ॥

खाय पिये उतना रखे, बाकी रखे न पास ।
और आस ब्यापे नहीं, सतगुरु का बिस्वास ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे गरीबी दीनता, दृढ़ साध को निस्चै चही ।
खोटी खरी कोइ कहन कहे, जिनकी नहीं मन में लही ॥
अपनी रहनि रस रीति को, आठो पहर जाँचे रही ।
सतगुरु बचन मुख बाक बानी, जानि सोइ समझे सही ॥
सबही सनातन संत ने, गुरु बैन[1] की आँखी कही ।
हिये में समझ धरि कर करे, सोइ साध गुरु सूरत लही ॥
निसदिन चरन में लौ लगे, पल एक नहिं बाहर गई ।
हिरदे गुरू के ध्यान बिनु, छिन एक नहिं न्यारी रही ॥

॥ सोरठा ॥

साधन की यहि रीति, प्रीति परस परखें वही ।
गुरु चरनन जिन चीत, रमक[2] रीति जाने जोई ॥

॥ चौपाई ॥

हिरदे सज्जन साधू सोई । यहि बिधि परख चले जो कोई ॥
हे हिरदे यह साध सुभाऊ । निसदिन जिनके चरन उमाऊ[3] ॥
यहि बिधि साध रहे परबीना । निस दिन पकरि प्रेम रस पीना ॥
उनका संग करे जो कोई । जीवन मुक्त जासु की होई ॥

(असाध के लच्छन)

और असाधू की सुनु रीती । आसा लोभ परख की प्रीती ॥
जो कोइ देने को ले आवे । प्रीति परस्पर बहुत जनावे ॥
ऐसी चित्त बिर्ति अनुसारा । कहे मुख से हम जग से न्यारा ॥
मन का लोभ भोग भरमावे । ममता माया नित्त नचावे ॥

॥ दोहा ॥

मन की ममता ना घटी, लटी[4] न छूटे चाल ।
हाल हाथ से दे कोई, ले झोली में डाल ॥

---

(१) बचन । (२) कुछ । (३) उमंग । (४) नीच ।

॥ चौपाई ॥

खेती बैल महल सब राखे। हम हैं साध कहे अस भाखे ॥
बट्टा ब्याज करे दिन राती। खौं[1] खाँड़े[2] गाड़े बहु भाँती ॥
अपनी मरन जिवन सुधि नाहीं। साध हुए केहि कारन भाई ॥
भेख किया पर रेख[3] न जानी। करम कांड करनी पहिचानी ॥
यों यहि भाँति रहनि दिन राती। साधू नाम करे उतपाती ॥
जो कोई दरसन को जावे। हाथ मिठाई देखि सिरावे[4] ॥
जो कोइ राजा बाबू आवे। ले परसाद सामने जावे ॥
ऐसे मन की बिर्ति बनाई। देखी बात परखि सब भाई ॥

॥ दोहा ॥

यह रुजगारी साध की, बरनि बताई बात।
हाथ कछू नहिं अंत को, पंथ मिला नहिं साथ ॥

(पंथ)

॥ चौपाई ॥

अब पंथा पंथी दरसाऊँ। पूछे पंथ न जाने गाऊँ ॥
पंथ नाम मारग को होई। सो पंथी बूझा नहि कोई ॥
गाय बजाय खंजरी पीटी। गावत मुख में पड़ि गई सीठी॥
जो संतन का सब्द बिचारा। सूझे पंथ वार अरु पारा ॥
सब्द संधि कछु और बतावे। यह नहिं समझ सोध[5] मन लावे॥
गुरु बानी संतन की बूझे। निर्मल नैन आँखि से सूझे ॥
गुरु चेला मिलि पंथ चलावा। संत पंथ की राह न पावा ॥
यहि लेखा देखा उन माहीं। पूजा को उनका मन चाही ॥

॥ दोहा ॥

पूजा के कारन करे, सब बिधि भाँति उपाधि।
आदि अपन जाने नहीं, कहने को है साध ॥

---

(१) भंइधर, तहखाना। (२) खोद कर बनाना! (३) होनी, आक़िबत। (४) सराहै।
(५) बिचार।

(साध शिरोमनि या संत)

अब सुनु कहूँ सिरोमन साधू । उनकी मति गति कहान अगाधू ॥
उनकी सुरति कँवल पद माहीं । पदम पार बेनी नित न्हाई ॥
मंजन करि करि करते ध्याना । पदम सुरति सतगुरु अस्थाना॥
पदम कँवल पर आसन लावे । जहँ कोइ साध सूरमा जावे ॥
सुन्न और महा सुन्न के पारी । जहँ वह जाय लगावे तारी ॥
सत्तपुरुष के दरसन पावे । तीन लोक के पार कहावे ॥
यह सब संत महात्मा गाये । साखी सब्द माहिं दरसाये ॥
जो सब्दन का करे बिचारा । जब जिव का पावे निरबारा ॥

॥ दोहा ॥

सब्द साखि में संधि है, अंध लखे नहिं कोय ।
यह माया फरफंद से, बंध न टूटा सोय ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

साध साध का एक बिचारा । तुम कहि भाखा चारि प्रकारा ॥
साध साध सब एक बतावा । तुम बरनन कीन्हा कइ भावा॥

(साध गति)

(तुलसीदास बाच)

साधन की है रीति अनेका । साधू मति है अगम अलेखा ॥
यह सब भेख नाम से पूजे । साधू की गति बिरले सूझे ॥
षटदर्सन को बेद बखानो । साध रीति फिर भिन[1] करि जानो॥
पंथ रीति भेखन के माहीं । यों सब संत कहें गोहराई ॥
जो प्रयाग बेनी[2] पद पावे । सुनु हिरदे सो साध कहावे ॥
सतगुरु के पूरन पद बासी । जहँ नहिं जाय सके अबिनासी॥

॥ दोहा ॥

जो संतन सतगुरु कहा, पूरन पद के माहिं ।
चरन कँवल बेनी बहे, नित जहँ जावे न्हाय ॥

---

(१) जुदा । (२) सुन्न ।

॥ चौपाई ॥

यह मारग साधू मत चीन्हा। सो समझे सज्जन परबीना ॥

(हिरदे बाच)

साधू की करनी दरसाई। रहनी रमज[१] सभी समझाई ॥
गृस्थी का कहो कौन निबेड़ा। सतसँग किया न सतगुरु हेरा॥
सिर पर मोट[२] अपरबल भारी। जुगन जुगन उतरी न उतारी ॥
आठ पहर वाही में लागे। कर्म भोग पूरबले जागे ॥
वह कहो कैसा करे बिचारा। आठ पहर आफत में हारा ॥
वोहि कभी कहुँ होय निबेड़ा। नर तन नाहिं मिले जग फेरा ॥
जीवन तुच्छ जक्त के माहीं। नर देही पावन को नाहीं ॥

॥ दोहा ॥

नर देही दुर्लभ कहैं, मिलै न बारम्बार।
धार बड़ी भवसिन्धु की, क्योंकर उतरे पार ॥

(गृहस्थी का कैसे निबेड़ा होय)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

यह भवसागर अगम अथाहा। यामें लगे न बल्ली थाहा ॥
सतगुरु संत भाग से पावे। की उनकी वे दया बसावें ॥
जो कोइ और उपाव लगावे। भवसागर गम[३] कभी न पावे ॥
काल दिवाल बाट पर कीन्हा। घाटा घेर आपने लीन्हा ॥
कूँची[४] हाथ संत के घाटा। ताला खुले मिले जब बाटा ॥
और तने[५] कोइ राह न पाई। करि करतब सब देंहि गँवाई ॥
सेवा साध करै दिन राती। तौ सुभ के फल आवे हाथी ॥
साँचे भाव प्रेम से पूरी। तौ कछु पाप होयँगे दूरी ॥
कोई आतमा भूखी आवे। वाको देखि दया दिल लावे ॥
वो अहार की कीमत नाहीं। मानो सब बैराट जेंवाई ॥

(१) भेद। (२) गठरी। (३) थाह। (४) कुञ्जी। (५) तरह।

(पिंडुका पिंडुकी की कथा)

ब्यास भागवत माहिं बखाना। पिंडुका पिंडुकी का दृस्टाना ॥
जेहि बृच्छ पर करें बसेरा। नीचे कीन्ह मुसाफिर डेरा ॥
त्रिया पुरुष दोउ बात बिचारे। भूखा रहा मुसाफिर द्वारे ॥
ठंढ की सीत लगी जब भाई। लकड़ी बीनि मुसाफिर लाई ॥
बन में आग कहाँ से आवे। देह जुड़ानी सीत सतावे ॥
तब पिंडुकी मन किया बिचारा। गृहस्थी पर धिरकारी डारा ॥
भूखा रहा मुसाफिर द्वारे। घर मसान सम जानि निहारे ॥
जब पिंडुकी उड़ अगिनो लाई। ऊपर से उन दीन्ह गिराई ॥
जबहिं मुसाफिर आग जराई। उठ करि बैठ तापने भाई ॥
पिंडुको पिंडुका बहु दुख भींजे। भूखा रहा कौन बिधि कीजे ॥
पिंडुकी गिरी आगि के माहीं। फिर पीछे पिंडुका गिर भाई ॥
दोऊ जरे आग के माहीं। भूँजि मुसाफिर भूख जुड़ाई ॥
भाखी ब्यास कथा के माहीं। भूखा न रहे द्वार पर जाई ॥
जेहि घर द्वारे भूख रहाना। वह घर कहे मसान समाना ॥
बड़ा दोष पातक वहि लागे। भूखा रहे द्वार के आगे ॥

॥ दोहा ॥

जो द्वारे भूखा रहे, गृहस्थी में होइ पाप।
आप अपनपौ परखि के, भूखे को संताप ॥

॥ चौपाई ॥

हे हिरदे यह गृहस्थ बिचारा। यहि बिधि से करि लेइ गुजारा॥
गृहस्थी माहिं बने कछु नाहीं। भूखा देखे देइ जुड़ाई ॥
जाति पाँति नहिं देखे भाई। भूखा कोइ होय देइ खिलाई ॥
जो अभ्यागत[1] भूखा आवे। साध जानि के सीस नवावे ॥
जो परसाद होय घर माहीं। उनके सन्मुख आनि चढ़ाई ॥
वह भोजन को भोग लगावे। उनकी दया पाप नसि जावे ॥

---

(१) जो इसके घर आवे, मुसाफिर।

यही भाँति जग जीव गुजारा। और भाँति नहि पावे पारा ॥
जो कोइ समझि लखे यह बानी। गृहस्थी धर्म करे परमानी ॥

॥ दोहा ॥

गृहस्थी होय हिरदे दया, भूखे कछू खिलाइ।
बाक सनातन यों कहे, सभी सभी गोहराइ ॥

॥ छंद ॥

गृहस्थी धरम यह भाँति, कोइ भूखा दुवार रहे नहीं।
सरधा बने कछु होय जो जस, आनि के लावे सही ॥
हिरदे दया दिल धीर करि, यहि भाव की भिच्छा कही।
आतम दया मन माहिं बरते, तत्त की बातें यही ॥
जिव आपु सम सब का लखे, दुख भूख की भारी भई।
ऐसे बिचारे बात जब, वोहि पुन्न की कहो का कही ॥
जग एक इक जिव भूखा पोखे[1], कोटि फल उनको भई।
ऐसे रहै जग माहिं गिरही, वहि जीव को जीवन सही ॥

॥ सोरठा ॥

जीवन जग में सार, जो गिरही होइ अस रहे।
पावे पुन्न अपार, स्वर्ग लोक बासा करे ॥

(हिरदेवाच)

॥ चौपाई ॥

स्वर्ग पुन्न से पावे कोई। ऐसी तुमने बरनि बिलोई[2] ॥
पुन्न जोग से स्वर्ग सिधावे। पुन्न भोगि मृत लोकहि आवे ॥
स्वर्ग नर्क नहि हुआ निबेड़ा। फिर कीन्हा चौरासी फेरा ॥
आवागवन छुटा नहि स्वामी। जन्म धरे जिव अंतरजामी ॥
जग निस्तार पार नहिं पाये। यह तो आवागवन समाये ॥
वह उपदेस दिया नहि कोई। जासे आवागवन न होई ॥
सिर भरि बूड़ रहा जग सारा। माया मोह बँधा परिवारा ॥
जड़ता ने सब बुद्धि नसाई। कैसे भव जिव उतरि जुड़ाई ॥

---

(१) [illegible] करै। (२) [illegible] किया।

॥ दोहा ॥

स्वर्ग भोग पुन[1] के उदै, भोग करे भुगताय।
पुन्न भोग जब करि चुके, फिर चौरासी जाय॥

(सतसंग की महिमा)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे जग का यहि लेखा। बिन सतसंग न होय बिबेका॥
बिना बिबेक एक नहिं आवे। एक बिना नहि दुरमति जावे॥
दुरमति से दुनिया भई भाई। दुनिया दुरमति कीन्ह बनाई॥
यह ऐसे बूड़ा संसारा। संसय आस बँधा सिर भारा॥
बिन सतसंग बिबेक न आवे। बिना बिबेक ज्ञान कहा पावे॥
बिना ज्ञान बुधि सुधि नहिं होई। बिना बुद्धि बूझै नहिं कोई॥
बिन बूझै नहि आँखी सूझा। यों जग अंधा भया अबूझा॥
बिन सतसंग बूझि नहिं पावे। बिना बूझि नहिं तिमिर नसावे॥
संत दया अंजन अर्थावें। जब यह तिमिर आँख से जावे॥
सतसँग सब संतन गुहराया। तन मन दीन हुए जिन पाया॥

॥ दोहा ॥

केई[2] मूरख भटके फिरें, लगा न उनके हाथ।
साथ केई दिन से लगे, जगे न बूझी बात॥

॥ चौपाई ॥

सतसँग केई दिन करै जो कोई। बिना दया नहिं वासिल[3] होई॥
बिन वासिल कछु पड़े न हाथा। सतसंगति नहिं पावे बिधाता॥
बिन सतसंगति कधी न पावे। यहि बिधि संत सभी गुहरावे॥
सतसँग की महिमा कहें भारी। सो कोइ सज्जन साध बिचारी॥
करे घड़ी इक कोइ सतसंगा। सो वह करे जक्त भव भंगा॥
जिन अपने में लीन्ह बसाई। निकरे तिमिर आँखि खुलि जाई॥
जो कोइ सतसँग प्रानी पावे। जिनका आवागवन नसावे॥

(१) पुन्न। (२) कोई। (३) मेला।

हिरदे गृही[१] संगत कहा जाने । जग फंदे में जीव भुलाने ॥

॥ दोहा ॥

जीव दया पाले कोई, इनको इतना बहुत ।
मौत खड़ी सिर ऊपरे, मूरख बाँधे थोथ[२] ॥

॥ चौपाई ॥

यों हिरदे गृही का परभावा । भूखे दया भाव दरसावा ॥
और तने[३] नहिं होय गुजारा । जिव आतम सब एक पसारा ॥
दयाहीन नर दुष्ट कहावे । नर तन नाहक जन्म गँवावे ॥
सतसँग बिना भरम नहिं भागे । पुरबले अंकुर बिन नहिं जागे ॥
सतसँग सतसँग सब गुहरावे । सतसँग का कोई अंत न पावे ॥
बिस्वामित्र बसिस्ठ प्रसंगा । तप सतसँग कहे दोउ अंगा[४] ॥
साठ हजार बरस तप कीन्हा । उभै[५] घड़ी सतसँग तिन दीन्हा ॥
दोइ घड़ी सतसँगति आगे । तुली तपस्या तुले न लागे ॥

॥ दोहा ॥

कई बरस तप करि मरे, बीते साठ हजार ।
दोइ घड़ी सतसँग से, तुला सेस का भार ॥

---

(१) गृहस्थी । (२) मुँह । (३) तरह । (४) कथा है कि एक बार बशिष्ठ जी बिश्वामित्र जी के घर गये तो बिश्वामित्र ने उनको अपने साठ हजार बरस की तपस्या का आधा फल भेंट किया । कुछ दिन पीछे बिश्वामित्र जो बशिष्ठ जी के आश्रम पर गये तो बशिष्ठ जी ने दो घड़ी सतसँग का फल उनको भेंट किया । बिश्वामित्र जी ने जिनको अपने तपोबल का बड़ा अहंकार था इस भेंट को अपनी भेंट के मुकाबिले में बड़ा तुच्छ समझा और दोनों ऋषीश्वरों में बहस होने लगी कि साठ हजार बरस की तपस्या बढ़ कर है या दो घड़ी का सतसंग । अंत में बिश्वामित्र न्याव चुकवाने को शेष नाग के पास गये । शेष नाग ने कहा कि मेरे मस्तक पर सारी पृथ्वी का भार है उसको जरा सम्हाल लो तो निर्णय करूँ । बिश्वामित्र ने अपने साठ हजार बरस का तपोबल लगाया पर पृथ्वी न हटी, तब शेषनाग ने पूछा कि कुछ और पूँजी भी है । बिश्वामित्र ने बड़ी हेठाई की निगाह से कहा कि हाँ वही दो घड़ी के सतसँग का फल जो बशिष्ठ जी ने दिया है । शेष नाग बोले कि खैर उसको भी लगा कर आज़मा देखो । ज्यों ही ऋषिजी ने उसको लगाया पृथ्वी दूर हट गई—तब वह बोले कि अब निर्नय करिये, शेष नाग ने जवाब दिया कि अब भी निर्नय करना बाकी है जब तुमने देख लिया कि वह अपार भार जिसे तुम्हारा साठ हजार बरस का तपोबल रंचक ने न हटा सका वह दो घड़ी के सतसंग के महात्म से दूर दूर हट गया । बिश्वामित्र लज्जित होकर लौट आये । (५) दो ।

॥ दोहा ॥

बिस्वामित्र बसिस्ठ की, भई परस्पर बाद ॥
उन तप को कीन्हा बड़ा, उन सतसंग अगाध ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

यह स्वामी सतसँग की महिमा। जो कहुँ मिले करे इक लहमा॥
भाग बड़े सज्जन के सोई। वे सतसँग में रहे समोई ॥
अब वह कथा कहो बिस्तारी। जुगन जुगन की पूछूँ सारी ॥
सतजुग सब से बड़ा बतावें। कलिजुग छोट सबै मिलि गावें॥
कहो स्वामी मुख बैन बिलासा। याका भाखो भेद खुलासा ॥

(तुलसीदास बाच)

सुनु हिरदे यामें दोइ बाता। याकी बूझु बचन बिख्याता ॥
जग रचना को सतजुग भारी। जिव निस्तार कलू अधिकारी॥
भिन भिन या का भेद सुनाऊँ। तोको बरनि भाखि समझाऊँ ॥

॥ सोरठा ॥

बिध बिधि भाखूँ बैन, कहन कोई राखूँ नहीं।
सुनने में सुख चैन, नैन निरख दीसे वोही ॥

(सतजुग का प्रभाव)

॥ चौपाई ॥

अब सुनु याको कान लगाई। प्रथम कहूँ सतजुग गति गाई॥
जब लछमी प्रभुता बिस्तारी। माया सुख कीन्हा अधिकारी॥
उमर बहुत कल्पन की कीन्हा। जोधा जोर अधिक लखि लीन्हा॥
कंचन भूमि पिरथिवी कीन्ही। मट्टी मीठ लगे जस चीनी ॥
एक कमावे घर दस खावे। खेती में सौगुन उपजावे ॥
द्रव्य अपार अपूरब भारी। जग माया कीन्हा बिस्तारी ॥
हीरा रतन जवाहिर सोई। कलसे रतन महल के जोई ॥
इन बातन सतजुग है भारी। माया छलन किया बिस्तारी ॥

इन आसा में जीव जुड़ावे । बंधन ले आसा फिरि आवे ॥
ऐसे जक्त बाँधि बिस्तारा । जीव सुखी माया अधिकारा ॥

॥ दोहा ॥

इन बातन सतजुग बड़ो, पिया घर जीव भुलाय ।
यह सुख माया में बँधे, उलटि काहे को जाय ॥

॥ चौपाई ॥

उलटि जीव भव सागर आवे । बंधन से मालिक बिसरावे ॥
सतजुग ध्यान हाड़ में प्राना । खान पिवन बिन कस्ट बखाना ॥
कास्ठा फल तप राज कराई । दोनों जक्त भोग के माहीं ॥
इन बातन सतजुग बढ़ गाया । पिया मिलन नहिं जीव बताया ॥
यासे सतजुग छोट बतावे । पिया मिलन की राह न पावे ॥

(कलिजुग का प्रभाव)

कलजुग संत बड़ा ठहरावें । संत उतरि पिय घर से आवें ॥
नाम डोरि दे सुरति लखावें । सुरति डोरि जिव पिय घर जावे ॥
सब संतन कलु बड़ा बतावा । यामें जीव अपनपौ पावा ॥

॥ दोहा ॥

बड़ा कलूजुग सब कहें, संत बचन के माहिं ।
रामायन के बाक में, तुलसी कही बनाय ॥

॥ चौपाई ॥

कलु कर एक पुन्न परतापू । मानस पुन्न होय नहिं पापू ॥

॥ दोहा ॥

कलजुग सम नहिं आन जुग, जो नर करे बिस्वास ।
नाम डोरि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास ॥
कलजुग सम नहिं आन जुग, संत धरें अवतार ।
जीव सरन होइ संत के, भवजल उतरै पार ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कही कलू की साखी । यहि बिधि यों सब संतन भाखी ॥
द्वापर त्रेता का यह लेखा । ये जुग में औतार बिसेखा ॥

मार निसाचर जग के माहीं। यह लीला उन ने दरसाई ॥
जीव जेहि घर से चलि आया। वहि घर राह नाहिं दरसाया ॥
मार कूट संग्राम सुनाया। आतम हत जिव मारन गाया ॥
संत दयाल दया अर्थावें। जीव हतन की राह छुड़ावें ॥
अज्ञानी को ज्ञान बतावें। दे उपदेस दया उपजावें ॥
अंकूरी जिव में धरि लेई। हिरदे सुद्ध हरख हिय जेई ॥

॥ दोहा ॥

संत चरन बिस्वास से, कलजुग में निरधार।
सतजुग तो बंधन करे, कहें सब संत पुकार ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे कलूजुग जोग है, सब सन्त ने ऐसी कही।
लेवें सन्त औतार जेहि जुग, जीव को सुधि बुधि दई ॥
हिये के तिमिर खुलि ज्ञान उपजे, सन्त की सरना लई।
दृढ़ कै दिये उपदेस मन को, भोग बिष त्यागे रही ॥
इतनो कलू परताप जग में, सब्द को समझै सही।
सतजुग सुनो सब रीति उनकी, उलटि सुधि घर ना लई ॥
लीला बिलोके कृतृम बस, जिव अंध का अंधै रहीं।
सतजुग जगत में नीक कहें, हिरदे सुनो बातें यही ॥

॥ दोहा ॥

सतजुग की बरनन[1] करें, कलजुग कहत मलीन।
सब दुनिया ऐसी कहे, सन्त बचन मुख चीन्ह ॥

॥ चौपाई ॥

सन्तन ने कलु नीक बताया। सतजुग का इतबार न आया ॥
त्रेता द्वापर कृतृम देखा। मार कूट रस रीति बिसेखा ॥
यामें नाहिं जीव को काजा। ये जुग में भूमी भये राजा ॥
राजकाज जग रीति अनीती। जो जिन करी भई जस रीती ॥

(१) बड़ाई।

यहि बरनन कछु हाथ न आवे। को कहि कहि सिर मूड़ पचावे।।
यह हिरदे बकवायद[१] लेखा। आवत कछू हाथ नहिं देखा।।

(सतसंग की महिमा)

जो सतसंग मिले कोइ बारा। घड़ी एक दोइ होइ कृतारा[२]।।
बड़े भाग सतसंगति होई। जब अनुराग जीव में जोई।।

।। दोहा ।।

सतसंगति यह जीव को, लगे जो अंदर जाय।
माहिं[३] भाल खटकत रहे, काल बली को दाँव।।

(हिरदे बाच)

।। चौपाई ।।

हे स्वामी जो सतसँग पावे। उनको भर्म कहो कस आवे।।
यह मोरे मन भया बिचारा। सो स्वामी कहिये निर्बारा।।

(तुलसीदास बाच)

हिरदे उन सतसंग न कीना। अंदर चुभक[४] नाहिं रस पीना।।
ज्यों पानी पाहन पर डारा। ऊपर गील सूख वोहि बारा।।
अंदर हुआ गील नहिं भाई। कहो सूखे नहि कहा कराई[५]।।
ज्यों मिसरी पानी में डाली। मिसरी घुल पानी रस चाली।।
पानी मिसरी इक रँग राता। जल मीठा मिसरी के साथा।।
घुली मिठाई जल के माहीं। सो सरबत मीठा भया भाई।।

।। दोहा ।।

जल मिसरी कोइ ना कहे, सर्बत नाम कहाय।
यों घुल के सतसँग करे, काहे भरम समाय।।

।। चौपाई ।।

उन हिरदे सतसंग न कीन्हा। जिनको आया भर्म यकीना।।
बिन माँगे से दूध दिवावें। माँगे से पानी नहिं पावे।।
जिन पर उनकी मेहर कहावे। पानी से वे दूध दिवावें।।

---

(१) बकवाद। (२) कृतार्थ। (३) अंतर। (४) डुबकी लगा कर। (५) कहो तुरत सूख न जाय तो क्या करै।

जो उनकी मन मौज निहारे । दिल में होय सोई धरि धारे ॥
यह सतसंग गूढ़ गति गाई । यह कोइ रतन पारखी पाई ॥
जैसे भाँग पिये कोइ भाई । नसाबाज जो जाय पचाई ॥
नया कोई पीवन को जावे । उसके तन को तुरत घुमावे ॥
ऐसे सतसँग का रस भारी । पीवत आवे तुरत खुमारी ॥

॥ दोहा ॥

सूरा रन में सीस को, धरे हथेली माहिं ।
सरा[1] सती जरि जाय जो, पिल पैठे घर माहिं ॥

॥ चौपाई ॥

छाती बिन सूरा ज्यों पेले । सूरा बिन सिर धड़ से खेले ॥
ऐसा जो मारग पग धारे । धड़ ऊपर से सीस उतारे ॥
दूध छठी का निकसे भाई । सिर बेचे मारग जिन पाई ॥
यह नहिं दूध भात की बाता । बैठे खान चलावे हाथा ॥
जो यह राह सहज की होती । तो ब्राह्मन क्यों बाँचत पोथी ॥
तप अरु जोग कठिन पहिचानो । इनहिं राह अटपट करि जानो ॥
ऐसा मारग बिकट अतोला । पचि पचि मरे किनहुँ नहिं तोला ॥
संत राह रस्ते की बातें । सतगुरु बिना कोई नहिं पाते ॥

॥ दोहा ॥

राह रकाने संत के, मारग को को जाय ।
बड़े बड़े महात्मा थके, कहे को अगम अथाह ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी मोहिं बरनि बतावो । सन्तन की गति गाय सुनावो ॥
कहो मारग केहि देस रहाई । कहँ होइ राह देस को जाई ॥
कैसा देस बरनि मोहि कीजे । हिरदे दया हिये में लीजे ॥

---

(१) [illegible]ग्नि ।

(संत देश)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

जहँ नहिं पृथ्वी पवन अकासा। पाँच तत्त मारग नहिं स्वासा ॥
चाँद सुरज तारागन नाहीं। जोगी ब्रह्मा बिस्नु न जाईं ॥
दस अवतार राह नहिं जानी। निरंकार नाहिं निर्बानी ॥
जोति सरूप न पहुँचे भाई। नहिं ओंकार अकार न जाई॥
पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। जाके आगे सतगुरु देसा ॥
जाके परे संत अस्थाना। उनका देस उनहिं पहिचाना ॥
हे हिरदे यह अकथ बिलासा। उनकी गति उनही परकासा ॥
यहि रे अपूरब को को जाने। बेद नेत कहि संत बखाने ॥
जहँ नहिं साखी सब्द न बानी। यह अदेख गति किनहुँ न जानी॥
वे करि दया देइँ दरसाईं। उनकी मेहर बिना नहि पाईं ॥
देखन में नहिं नजरे आवे। हिये द्दग नैन खुले जब पावे ॥
सो अंजन है उनके पासा। दया बिना और झूँठी आसा ॥
के पल माहिं दया दरसावें। कृपावंत संत को पावें ॥
केइ मूरख पचि मुए अनेका। उनकी मेहर मिले नहि ठेका ॥

॥ दोहा ॥

हे हिरदे यहि अकथ गति, कही सब संत बिचार।
संत सिरोमनि रीति को, पावे को निरधार ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे ने बचन सुनाया। यह तो समझ माहिं मोरि आया॥
कपट भेष जो साध कहावे। भेष बनाय ठगी करि लावे ॥
देखत साध सरोतर[1] भाई। अंतर कपट छलन को चाही ॥

(१) हर प्रकार [illegible]।

(कपट भेष—बाघ का दृष्टांत)

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

तब तुलसी बोले सुनु भाई। याका एक प्रसंग सुनाई ॥
इक बन बाघ रहे बन खंडी। बन में मठ देवी जहँ चंडी ॥
वोहि अस्थान ठिकाने भाई। बाघ वहीं बिसराम कराई ॥
धुंधूकार बड़ा बन भारी। एक दिवस गये बाघ सिकारी ॥
सब दिन फिरे सिकार न पाई। साँझ पड़े अस्थान सिधाई ॥

॥ दोहा ॥

खुध्या में ब्याकुल हुए, लगी सिकार न हाथ।
राति बिताई बिपति से, फजिर किया उतपात ॥

॥ चौपाई ॥

बाघ साध का भेष सँवारे। फूँकि पाँव भूमि पर डारे ॥
बिन फूँके नहिं पाँव उठावे। फूँकि भूमि जब पाँव चलावे ॥
येही भाँति मारग में आवे। मानो सुद्ध साध दरसावे ॥
बंदर एक बृच्छ पर बैठा। देखी अचरज बात अनूठा ॥
बाघ फूँक धरि पाँव चलाई। यह अचरज देखा बढ़ भाई ॥
बंदर के मन भया अचंभा। पिरथी फूँकि धरे पग लंबा ॥
बृच्छ नजीक पास जब आया। जब धीमी सी चाल उठाया ॥
बंदर ने पूछो हे भाई। तुम हो कौन कहाँ से आई ॥

॥ दोहा ॥

अरे बनचर हम साध हैं, दया भाव के माहिं।
फूँकि पाँव हम यों धरें, जिन चींटी मरि जाय ॥

॥ चौपाई ॥

बंदर के मन में उठि आई। याके चरन धरूँ सिर जाई ॥
ऊँचे उतरि डार पर नीचे। जा करि पड़ो पाँव के बीचे ॥
तब बंदर ने बचन उचारा। स्वामी धूप बड़ी यहि बारा ॥

[illegible]ख।

करो बृच्छ बिसराम निवासा । मैं सेवक तुम्हरो निज दासा ॥
हौले पाँव उठाये आये । बृच्छ छाँह में आसन लाये ॥
बंदर उतरि पाँव सिर दीन्हा । तबही पकरि डाढ़ में लीन्हा ॥
हे भाई तू सेवक प्यारा । साधू को दीन्ही ज्योनारा ॥
आज अहार बनो भल भाई । तुम कीन्ही मोरी सेवकाई ॥

॥ दोहा ॥

बंदर को हाँसी लगी, सुने कपट के बैन ।
बाघ मनै बिसमय भई, क्यों हाँसे सुख चैन ॥

॥ चौपाई ॥

कहे बंदर हाँसी यों आई । एक अचंभा देखा भाई ॥
जब बन बाघ पूछिया भाई । तो को हाँसी क्यों करि आई ॥
तब बंदर बोला अस भाऊ । ढील करो मैं बचन सुनाऊँ ॥
जब बन बाघ ढील मुख कीन्हा । बंदर छलाँग डारि[1] को लीन्हा ॥
जब बिस्वास बाघ बुलवावे । नहिं बंदर वाको पतियावे ॥
ऐसे कपट साध जग जानो । गुन मन ज्ञान कहा पहिचानो ॥
बन्दर कहे सुनु बाघ प्रसंगा[2] । अब मैं कबहुँ करूँ नहिं संगा ॥
सर्प उरगाने की जस बाता । अस मोहिं आज कीन्ह तुम घाता ॥

॥ दोहा ॥

यह मन तो बंदर कहा, बाघ कहा है ज्ञान ।
उरगाना कहें गरुड़ को, काल सरप पहिचान ॥
ज्ञान पकरि मुख में लिया, मन बंदर को जाय ।
गरुड़ काल मुख सरप को, भच्छन को रे उपाय ॥
बाघ कहे बन्दर कहो, सरप उरगाने बात ।
कहो कैसे उनकी भई, सो बन्दर कहो साख ॥

(उरगाने और साँप की कथा)

॥ चौपाई ॥

कहे बंदर सुनु रे बन बाघा । तैंने छल कीन्हा यहि जागा ॥

[illegible]

साध जान तोरे ढिंग आया। तैंने मोको डाढ़ दबाया॥
जैसे उरगाने ने छल कीन्हा। उनने बचन सरप को दीन्हा॥
बचन दिये पर दगा बिचारा। जेहि बिधि कीन्हा हाल हमारा॥
उरगाना इक जाति मुसाफिर। रहे बड़ चोर चलन में काफिर॥
डेरा कीन्ह सहर इक माहीं। खाने में आंध रात बिताई॥
घोड़ा एक रहे उन पासा। तसमा टूटा करे तलासा॥
वोहि दुकान बनिये से पूछा। तसमे बिन घोड़ा रहे छूछा॥

॥ दोहा ॥

बनिये से उन पूछिया, कहाँ चमार का ठाम।
तसमा टूटि बनावने, यह जल्दी का काम॥

॥ चौपाई ॥

आधि रात जब गई बिताई। पूछत फिरै चमार का ठाँई॥
ढूँढ़त गये चमार के पासा। तसमा एक बनावो खासा॥
तब चमार बोला हे भाई। रात पड़े अब नहिं बनिआई॥
दिया न बाती तेल उजाला। मोसे बने नाहिं ततकाला॥
वाको टका दिये दो चारा। फजिर बने सो करो बिचारा॥
इतनी कहे मकाने आया। उस चमार ने डौल बनाया॥
काट कूट करि करी तयारी। कुंडली[1] पानी माहिं तगारी[2]॥
वामें धरि पत्थर से दाबा। जब चमार सोया ले लाभा॥

॥ दोहा ॥

ठंढ मास के दिवस में, सरप कहूँ चलि आय।
कुंडली करी तगार में, माहीं पैठे जाय॥

॥ चौपाई ॥

ठंढ में बैठ रहा जल माहीं। तन में होस रहा नहिं भाई॥
फजिर भये उरगाना आई। राह चले जल्दी करि भाई॥
सरप कुँडलिया मारे बैठा। ठंढ माहिं पानी में ऐंठा॥

---

(१) गेंडुरी बना कर। [illegible] रतन जिसमें [illegible] भिगाते हैं।

लीन्हा तुरत चमार उठाई । भूल गया चमड़े को भाई ॥
दोच दाच[1] चपटा कर दीन्हा । रापी[2] ले मुख चीरा कीन्हा ॥
उरगाने लीन्हा ततकाला । उनने ले तँग में कस डाला ॥
होइ सवार मारग में लागा । पाँच कोस निकले वोहि जागा ॥
सीत उड़ी रबि तेज दिखाना । गरमी भई सरप अकुलाना ॥
उरगाने को मालुम नाहीं । सरप कसा घोड़े के माहीं ॥
मारग बाँबि सरप इक बैठा । कहि अवाज इक बचन उलेटा ॥
कसा सरप घोड़े पर देखा । तोको लाज न आवे नेका ॥
काला होइ कर डसता नाहीं । तैंने सरप जाति लजवाई ॥
जब लगि काम पड़ा नहिं काले । तैं का बोले बाँबी वाले ॥
माल गड़ा जिस पर तैं बैठा । काम पड़ा नहि खाया खेटा ॥
माल गड़े पर तैं खुस भाई । वह गरूर मन में भरि आई ॥
मेरी दसा डसन की नाहीं । जब तूने यह नोक चलाई ॥
दोनों बोल सुने उरगाने । घोड़ा छोड़ तुरत अलगाने ॥
सर्प कसा घोड़े तँग माहीं । देखा जब दिल दहसत खाई ॥
घोंड़े कसा सर्प जोइ बोला । अब कहुँ डरे जाय मत डोला ॥
खोल निकाल तंग से न्यारा । तोको नहिं मैं डसने हारा ॥
तंग खोल करि बाहर काढ़ा । मोको लगे बदन में जाड़ा ॥
जब चमार ने यहि गति कीन्हा । तैं तँग माहिं जबर कस दीन्हा ॥
अब मेरे हैं प्रान चलइया । तोको मैं इक भेद कहइया ॥
बाँबी माहिं माल है भाई । ताता तेल देव छिड़काई ॥
इतनी कहि उन प्रान गँवाया । उरगाना अपने घर आया ॥
ताता तेल तुरत करवाया । उरगाना बाँबी पर आया ॥
बाँबी माहिं सर्प ने जाना । ताता तेल छिड़क ले आना ॥
सर्प कहे सुनु रे उरगाना । लेन माल मारन को ठाना ॥

(१) [illegible] ... [illegible] ... [illegible] । (२) [illegible]ड़ा काटने का औजार ।

उलटि तोहिं मैं डस कै खाई। तौ यह माल कहाँ ले जाई॥
यासे एक बिचार बताई। तू भी रहे माल तैं पाई॥
नित इक दूध कटोरा लावो। एक मोहर मोसे ले जावो॥
तब उरगाने किरिया खाई। तुम हम बीच दगा नहिं भाई॥
तब चलि के वह आवन लागे। सत सत बचन कहूँ तोरे आगे॥
तू मैं तीसर जाने नाहीं। तीसर में सब बात नसाई॥
बचन करार हुआ दोउ केरा। जब चलि आये अपने डेरा॥

॥ दोहा ॥

जो करार भयो सर्प से, उरगाने मिलि दोय।
तीसर कोइ जाने नहीं, बचन पालिये सोय॥

॥ चौपाई ॥

किरिया कसम भई सब भाँते। दीन इमान बचन की बातें॥
हम तुम माहि बीच भगवानै। अब दूसर कोइ बात न जानै॥
यों कहि कर घर अपने आया। दूध कटोरा भर करि लाया॥
बाँबी केर पास धर दीना। निकरा सर्प दूध सोइ पीना॥
मोहर सरप लेकर इक डारी। ली उरगाने हाथ पसारी॥
मोहर लई घर अपने जाई। सो दइ तिरिया हाथ के माहीं॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। एक दिवस पुत्र ने पहिचाने॥
तिरिया पुत्र कहे समझावो। कहो यह मोहर कहाँ से लावो॥

॥ दोहा ॥

नित की मोहर मिले कहाँ, कहो कौन से ठाँव॥
सो ठिकान मोसे कहो, पिता पुत्र परभाव॥

॥ चौपाई ॥

ठाँव ठिकान मोहिं बतलावो। नहिं फरियाद राज पर जावों॥
यहि बिधि बात पुत्र ने कीन्हा। उरगाने मुख अँगुरी दीन्हा॥
यह तो बात कहन में नाहीं। बाक कहूँ तो बचन नसाई॥
वह मूरख नहिं माने बैना। यह बरतंत कहो सुख चैना॥

मोहर कहाँ से नित उठि लावो । सो मोरे को ठौर बतावो ॥
यहि चर्चा में रात बितानी । फजिर पुत्र सँग हुआ निदानी ॥
दोनों मिलि बाँबी पर आये । सर्प देखि दिल में दुख पाये ॥
सुनु उरगान बात तैं फोड़ी । दूसर दगा करी तैं चोरी ॥

॥ दोहा ॥

सर्प कहे उरगान से, बचन बिरोधी कीन्ह ।
लड़काई बुधि पुत्र की, मारे कोइ दिन चीन्ह ॥

॥ चौपाई ॥

तब उरगान बोलिया भाई । मैं मोरे पुत्र भेद कछु नाहीं ॥
तुम संका मन में मत लावो । यहि अपना तुम दास बनावो ॥
तुम हम बचन करैं प्रतिपाला । कछु मन में नहि लावो दयाला ॥
तुम्हरी टहल करन नित आवे । दूध कटोरा नित प्रति लावे ॥
सरप बचन बोला यों भाई । यह तो तुम कीन्ही लरिकाई ॥
इन बातन में दगा बिचारे । इक दिन हानि लाभ जिव मारे ॥
यह तो हाल हरक्कत कीन्हा । दूसर कान भेद तैं दीन्हा ॥
जब उरगान बचन यों बोला । जानो तुम मोरा बचन अडोला ॥

॥ सोरठा ॥

डोलै बचन हमार, जुगन जुगन नरकै परूँ ।
यों अस मनहि बिचारि, जनम बिगारूँ आपनो ॥

॥ चौपाई ॥

अस उरगाने बचन उचारा । तोरे मोर बीच करतारा ॥
यहि सुनि मोसे दगा न होई । सत सत बचन कहूँ मैं तोही ॥
अस कहिकर घर डगर सिधारा । सरप समझि मन माहिं बिचारा ॥
लड़का फजिर दूध ले आया । उरगाने ने आप पठाया ॥
बाँबी पास कटोरा लाया । धरि कर दूध तुरत अलगाया ॥
डरता सरप बाँबि से आया । दूध पियत मन संका लाया ॥
चौंकत दूध पिया उन भाई [illegible]धा मन के माहि समाई ॥

लई मोहर घर लड़का आया। मारग माहिं मता उपजाया ॥

॥ दोहा ॥

रोज दिवस यह को करे, नित को आवे जाय।
सरप मारि मरदन करूँ, माया लेउँ छुड़ाय ॥

॥ चौपाई ॥

नित नित कौन फिरे यहि काजा। सरप मारने मति उपराजा ॥
यों बिपरीति बुद्धि उपजाई। लड़का सरप मारने चाही ॥
लड़का यहि अपने मन ठाना। दूसर कोइ सुने नहिं काना ॥
उरगाने को मालुम नाहीं। लड़का यहि मन में उपजाई ॥
गुनता रहा रात भर सारी। सरप मारने बात बिचारी ॥
दूध फजिर को ले कर चाला। लठिया से मारूँ दरहाला ॥
सोंटा लिया हाथ के माहीं। दूध धरा बाँबी पर आई ॥
सोंटा सरप हाथ में देखा। चितवन चित्त चरित्तर लेखा ॥

॥ दोहा ॥

सरप समझ मन आपने, बिपरीत[1] बुद्धि बिचार।
आज उपद्रव होय कछु, यह मन माहिं सिहार ॥

॥ चौपाई ॥

यह अस समझि बाँबि से निकरा। सोच करी मन उपजा फिकरा ॥
दीन इमान भया पितु केरा। पहिले डसूँ धरम नहिं मेरा ॥
सोंटा पहिल चलावे आई। ता पीछे काटूँ धरि खाई ॥
यहि बिचार करि बाहर आया। सोंटा लड़के तुरत चलाया ॥
सोंटा लगा मूड़ के माहीं। सरप झपट लड़के को खाई ॥
जहर घुमरि घन्नाटी आई। लड़का पड़ा भूमि के माहीं ॥
गया फजिर से साम कहानी। जब माता मन में अकुलानी ॥
उरगाने से कहा बिचारा। लड़का गया भई बड़ि बारा ॥

---

(१) उलटी।

॥ दोहा ॥

यह उरगाना समझि के, तुरत चला वोही बार ।
देख ठिकाने सरप के, सोंटा हाथ मँझार ॥

॥ चौपाई ॥

भीतर बाँबि सरप अस भाखा । हे उरगान बचन भल राखा ॥
मैं तो से पहिले कह दीना । लड़के का मोहिं नाहिं यकीना॥
तैं बिस्वास किया मन मोरा । दगाबाज मन माहि कठोरा ॥
सोंटा तोर पुत्र मोहिं मारा । सिर में चली रुधिर की धारा ॥
जब मैं झपट पकड़ के खाया । तोर मोर यह बचन नसाया ॥
उरगाना रोवत घर आया । तिरिया को बरतंत सुनाया ॥
तिरिया बिकल पुत्र सुन सोगा । बिछुड़े पुत्र पुर्बले भोगा ॥
ब्याकुल रुदन करे कइ भाँता । पुत्र मरे सुन करि यहि बाता ॥

॥ दोहा ॥

पुत्र सोग सुन कर त्रिया, ब्याकुल भई मलीन ।
रुदन करे लट तोरि के, पुत्र सोग दइ[१] दीन ॥

॥ चौपाई ॥

उरगाने से भई लड़ाई । तिरिया पुरुष माहि अधिकाई ॥
लड़का मार मोर तैं डारा । मैं राजा से करूँ पुकारा ॥
त्रिय सिर खोल गई फरियादी । नीच त्रिया बुधि करी उपाधी ॥
करि बिषाद[२] राजा पर पहुँची । कहा ब्रतंत बात नहिं सोची ॥
मोरा पुत्र पुरुष ने मारा । यह इन्साफ होय दरबारा ॥
सुन राजा उरगान बुलाया । तुरत बाँधि कर पकरि मँगाया॥
तोरी त्रिया कहा कहे भाई । पुत्र पुरुष मोरा मारि सुनाई ॥
जब उरगाने बचन सुनैया । न्याय नीति दरियाफ करैया ॥

॥ दोहा ॥

गुनहगार दरबार का, तव[३] तकसीरीवार ।
माफ न कीजे गुनह की, तुरतै गरदन मार ॥

---

(१) ईश्वर । (२) [illegible] (३) तुम्हारा ।

हे राजन के श्री महराजा । गरदन गुनह मारिये आजा ॥
जो तकसीर अंग मोरे लागा । चाहे सो कीजे यहि जागा ॥
साँचहि साँच कहूँ जस बीती । मानो बचन मोर परतीती ॥
जो कछु भया बिधी बरतंता । कहूँ प्रसंग आदि से अंता ॥
कान सभा सब मिलि सुनि लीजे । मोरे बचन बाक चित दीजे ॥
सुनु यह कहूँ आदि बिख्याता । साँची झूठ परखिये बाता ॥
मैं परदेस गयो महराजा । यह रुजगार पेट के काजा ॥
कई दिवस में घर को आया । मारग भई कहूँ अथाया ॥

॥ दोहा ॥

एक सहर मारग महीं, रहिया मोर मुकाम ।
तसमा घोड़े को नहीं, टूटि कसन में चाम ॥

॥ चौपाई ॥

आधी रात फरक जब पाई । तब तसमे की सूरति आई ॥
तुरत चमार पास मैं गैया । सोवत वाको जाय जगैया ॥
तसमा एक चाहिये भाई । जो कछु कही दाम दिलवाई ॥
आधी रात बने नहिं भाई । तुरत तयार मोर घर नाहीं ॥
चाहै सोई दाम मैं देऊँ । तसमा तो तेरे से लेऊँ ॥
तब चमार कहे दिया न बाती । तुम चलि के आये अधिराती ॥
अब तो तसमा बने न भाई । फजिर कहो तो देउँ बनाई ॥
तब उरगाना समझ सुनावे । सदिये[1] घड़ी राति से जावे ॥
कहे चमार तुम जावो भाई । हाल करूँ चलते ले जाई ॥

॥ दोहा ॥

उरगाना उठ कर चला, आया जहँ बिसराम ॥
चमड़ा लिया चमार ने, काटा तसमा चाम ॥

॥ चौपाई ॥

गोल घरी तसमे की कीन्हा । सो तगार के महिं धर दीन्हा ॥

(१) तड़के ।

पानी भरा तगारी माहीं । तमसा तामें डार्यो जाई ॥
सीतकाल महिना मलमासा । पूस पड़े ठँढ होस हिरासा[१] ॥
सरप कहूँ चलि आया भाई । बैठा जाय तगारी माहीं ॥
चाम कुँडलिया धरी तगारी । सरप कुँडलिया बैठे मारी ॥
फजिर भये मैं जाय जगाया । तसमा दे अस बचन सुनाया ॥
जल्दी से चमरा उठि आया । चाम चूकि के सर्प उठाया ॥
चाम कुँडलिया सरप बनाई । दोनों एक तरह के भाई ॥
सरप कुँडलिया लीन उठाई । मुँगरी से मुँह दोचा जाई ॥

॥ दोहा ॥

रापी से मुँह चीरि के, चपटा दोच बनाय ।
कर दुरुस्त मोको दियो, तँग में खैंचा जाय ॥

॥ चौपाई ॥

होय सवार मारग को जाई । ठहरे पाँच कोस पर गाँई ॥
जहँ इक सरप बाँबि पर बैठा । देखा सरप तंग में ऐंठा ॥
जब उसने इक तरक चलाई । करिया नाम धराया भाई ॥
जब मोको मालुम अस बोला । देखा तंग सरप को खोला ॥
जब यह सरप कही सुनु भाई । मेरे प्रान पलक में जाई ॥
यहि बाँबी में सरप रहाई । यामें माल बहुत है भाई ॥
गरम कढ़ाय तेल करि डारे । काढ़े माल सरप को मारे ॥
असकहि प्रान तुरत तन त्यागा । मोरा लोभ माहि मन लागा ॥
तेल कढ़ाय गरम करि लाया । बाँबी पर लेकर चलि आया ॥

॥ सोरठा ॥

सरप कहे सुनु बात, माल मरे ले जाय तैं ।
मैं डसि खाऊँ तोहि, बहुरि माल को पावई ॥

॥ चौपाई ॥

सरप अवाज कही सुनु भाई । मोको मारि माल ले जाई ॥

(१) डर ।

मैं तोहिं पकरि तोरि के खाऊँ। तो रहे माल कौन से ठाऊँ॥
मैं इक बचन कहूँ उरगाने। जो मोरी बात कहन को माने॥
दूध कटोरा नित ले आवो। एक मोहर नित की ले जावो॥
सरप कही उरगाने मानी। दूसर कान कोऊ नहिं जानी॥
यह अस बचन भया दोउ माहीं। किरिया कसम दोऊ मिलि खाई॥
दूध पियाय मोहर ले आऊँ। भया अस यों बरतंत सुनाऊँ॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराना। तिरिया पुत्र बात यह जाना॥

॥ दोहा ॥

तिरिया यों पूछन लगी, मोहर कहाँ से लाय।
जहाँ दूध लै जात हो, देव मोहिं ठौर बताय॥

॥ चौपाई ॥

भया एक दिन श्री महराजा। लरिका दूध सरप के काजा॥
लेकर गया हाथ में दूधा। मैं नहिं जानूँ मन का सूधा॥
सोंटा लिया काँख के माहीं। सर्प पियत में चोट चलाई॥
झपटा सरप पुत्र को खाया। राजा को यह बरन सुनाया॥
राजा हुकम दीन तत्काला। लावो बाँबि खोद करि माला॥
उरगाने ने ठाँव बताये। खोदन माल राज से आये॥
माल मँगाय राज ने लीन्हा। तुरत बिदा उरगाना कीन्हा॥
तिरिया केर मूड़ मुड़वाया। साँच बचन उरगाना पाया॥
सुन बन बाघ बचन अस कीजे। साँचे पर साहब बहु रीझे॥

॥ दोहा ॥

बंदर कहे सुनु बाघ यह, उरगाने की साँच।
सत्त बचन आधीनता, कधी न आवे आँच॥

॥ चौपाई ॥

बंदर कहे दगा यह कीन्हा। सुनु बन बाघ भेष तैं लीन्हा॥
साध भये पर कपट न छूटा। झूँठे जबर जाल जम लूटा॥

मिथ्या बचन करे अधिकाई । निस्चै जीव नरक में जाई ।।
जो परपंची दगा बिचारे । बिना मौत परमेसुर मारे ।।
उठि कर गवन करो तुम भाई । अब मैं तुमको नहि पतियाई ।।
साँच भया राजा पै जाई । सरप से बचन झूँठ भया भाई ।।
कइ कइ कसम सरप से खाई । तीसर कान पड़े नहिं भाई ।।
पुत्र त्रिया को तुरत सुनाई । झूँठा भया बचन के माहीं ।।

।। दोहा ।।

जिन के बोले बंध नहिं, स्वारथ बचन रसाल ।
डारि गले बिच मेखला, खैंचे जम धरि खाल ।।

।। चौपाई ।।

अस तैं झूँठा भेख बनाया । साध बचन को दाग लगाया ।।
साँचे बचन बंध जोइ प्रानी । प्रान जाय बोले परमानी ।।
झूँठे बचन कधी नहिं भाखे । भीतर सुध मन मैल न राखे ।।
तन मन बचन बोल के साँचे । उनके बाक कढ़े नहि काँचे ।।
दुरमति दगा दाँव जिन कीन्हा । अपने भोग आप सिर लीन्हा ।।
जो परलोक बिगारा चावे । सो मलीन मन बुद्धि बसावे ।।
जो मतिहीन दीन नहिं जोवे । अपना जन्म अकारथ खोवे ।।
जन्म मरन का करे निबेरा । सो जीवन कोइ बिरले हेरा ।।

।। दोहा ।।

जग में जीवन तुच्छ है, कछु करि ले निरधार[१] ।
पार उतरना चहे जो, केवट समझि सुधार ।।

(हिरदे बाच)

।। चौपाई ।।

हे स्वामी यह कही कहानी । कौन परोजन बरनि बखानी ।।
को उरगाना सरप कहावा । को बंदर बन बाघ सुनावा ।।
को घोड़ा को तसमा होई । टूटा तंग माहि कहो सोई ।।

(१) नि...

कहो को सरप पुत्र ने मारा । उलटि सरप ने पुत्र बिडारा ॥
को गइ त्रिया राज फरियादी । बैठे कौन राज की गादी ॥
कस इन्साफ कीन्ह निरवारा । जो स्वामी कहो बरनि बिचारा ॥
जो सम्बाद कहा परसंगा । बिना अर्थ ब्यापे नहि अंगा ॥
सो बरतंत बरनि जतलाओ । हिरदे को भिन भिन अर्थावो ॥

॥ दोहा ॥

ये स्वामी परसंग का, कहिये बरन बयान ।
जान पड़े हित समझ ये, हिरदे परख पिछान ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहे बचन बिस्वासा । यह तन अंदर माहि तमासा ॥
बिन अस्थूल कहन में नाहीं । मूल मरम की भूल बताई ॥
बरनन रूप बिना कहुँ कैसे । समझि न पड़े रूप बिन जैसे ॥
जो कोइ सज्जन सुरति बिलासी । भीतर भूमि लखे तन बासी ॥
वे सुनि के करिहैं निर्बारा । निर्मल ज्ञान उदै अनुसारा ॥
जो मलीन मति बुधि के मैले । जिन बिन बूझे बचन उथेले[1] ॥
हिरदे कुटिल कुमति की झाँई । पड़ी नहीं सतसँग परछाँई ॥
सतसँग सुना न देखा आँखी । लखी नहीं सतगुरु मुख भाखी ॥

॥ दोहा ॥

अंदर की आँखी नहीं, बाहर की गइ फूटि ।
बिन सतगुरु औघट बहे, कभी न बंधन छूटि ॥

(उरगाने की कथा का आशय)

॥ चौपाई ॥

अब सुनु याका भेद बताऊँ । जो परसंग पूछि अर्थाऊँ ॥
उरगाना उर अंतर बासी । जा का नाम कहें अबिनासी ॥
तत्त तुरी घोड़े असवारी । जा पर बैठि फिरे जुग चारी ॥

---

(१) उलट दिया ;

तसमा तो सम रूप कहाना। टूटि नेह निज नाम भुलाना ॥
चाह चमार ने फेरि बनाया। तसमा तन तँग तुरत कसाया॥
मँजिल मुसाफिर चल करि गयऊ। सुभ और असुभ माँह दरसयऊ॥
चाह मारि सोइ चोख चमारा। काल सरप मुख तसम सँवारा ॥
तिन तसमे का बरनि सुनाया। तिन का तिन में जाय समाया॥

॥ दोहा ॥

चाह जो मारि चमार है, तसमा तन तजि आस।
पवन सुरति आधी चढ़ी, तिन का तिन के पास ॥

॥ चौपाई ॥

भूमि भुवंग माल मन धारी। माया पर बैठा अधिकारी ॥
मुख उर अंदर बास कराया। सो उरगाना पुत्र कहाया ॥
लख गो[1] गुन तजि गगन उजारा। उन भुवंग सिर सोंटा मारा॥
गगन चढ़त मुख मरम न पाया। काल सरप जबही धरि खाया ॥
इच्छा नारि त्रिया गुन साधी। मन राजा पै गइ फिरियादी ॥
उर में जाय राय नहिं रोका। मात पुत्र मन भया बिसोका ॥
निज इन्साफ राय ने कीन्हा। बासन पाँच माहिं धर दीन्हा॥
बरतन भूमि माल जनवाया। सो राजा ने खोदि मँगाया ॥

॥ दोहा ॥

धन खुदवाया राज ने, लीन्हा माल निकार।
बंदर बाघ बयान का, सुन करि करो बिचार ॥
ज्ञान बाघ मुख में लिया, बंदर बिपति बिनास।
उरगाने परसंग का, भाखा अगम अवास ॥
मन बन्दर मानी नहीं, ज्ञान बाघ बिस्वास।
मुख मेलत मुक्ती हती, मूल मुकर के पास ॥

---

(१) इन्द्री

बाघ कहे बन्दर सुनो, उरगाने की ऐन।
तू का जाने भेद यह, कहि भाखे मुख बैन ॥

॥ सोरठा ॥

उरगाना उर बास, नास कभी होवे नहीं।
जुग जुग रहत निरास, अंग आस ब्यापे नहीं ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे गगन गुरुज्ञान गति, उरगान की कोइ का कहे।
आगे अगम धुर धाम पुर, बिसराम जुग जुग ते भये ॥
अंदर उदै भये भानु भिन्न, पिछान पद पूरन गहे।
घट मठ मुकर में बास बस अस, आनि ऐनक में रहे ॥
सुंदर सिखर चढ़ि चीन्ह दृढ़, दुरबीन दुख सूरति सहे।
नित परन पालि दयाल दिल, जम जाल बुधि बंधन बहे ॥
आँखी अजर घर घूमि सोइ, भल भूमि भुइँ मारग गये।
तुलसी तरावट नैन नित हित, हेरि हिरदे को कहे ॥

॥ दोहा ॥

उरगाने का उग्र मत, सत सूरति को पंथ।
बाघ कहे बन्दर सुनो, नहि कोइ पावे अंत ॥
तुलसी हिरदे को कहे, उरगाने गति गाय।
जाय जुगति जाने जोई, सोई अगम लखाय ॥

॥ चौपाई ॥

मन का तत्त तरंग न पाया। बन्दर की गति बरनि सुनाया॥
उर में बास बसे उरगाना। बाघ ज्ञान गहे बचन बिधाना॥
जिन जो ज्ञान गती पहिचानी। दीन भये पर भक्ति समानी ॥
दिल में दीन गरीबी चावे। आप अपनपो को बिसरावे ॥
अंकुर उदै होय बड़ भागी। जिनकी प्रीति पुर्बली जागी ॥
सो सज्जन रस पिये अघाई। सतसँग की महिमा जिन पाई॥
जो पूरन सतगुरु पहिचाना। वह महिमा उनहीं ने जाना ॥
उर मारग अंदर में बासी, उर में गवन करे अबिनासी ॥

॥ दोहा ॥

सुरति सिखर अंदर खड़ी, चढ़ी जो दीपक बार।
आतम रूप अकास का, देखे बिमल बिहार॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे उरगाना सोई। यहि बिधि पंथ चले जो कोई॥
हर हिये हेर फेर कर आवे। सोइ उरगाना उग्र कहावे॥
बिमल बचन बातैं रस यानी[2]। मीठी मधुर पूर परमानी॥
भानु उदै हिये ज्ञान समाना। तन से तिमिर दूर अलगाना॥
रैन रवी ऊगे निसि नासी। उदै भानु जस तिमिर बिनासी॥
यों अंदर घट में उँजियारा। परम प्रकासक दीपक बारा॥
आतम तेज तत्त से न्यारा। सो बूझै सतगुरु का प्यारा॥
हे हिरदे यहि उनकी बाती। जो होइ उरगाने का साथी॥

॥ दोहा ॥

कहे तुलसी हिरदे सुनो, गुनो जो मन के माहिं।
उरगाने की आदि यह, दीन्ही तोहि जनाय॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यहि बरनि सुनाई। उरगाने की निज गति गाई॥
यहि में समझ लेव सब लेखा। यहि अपने मन करो बिबेका॥
जब हिरदे बोले कर जोरी। स्वामी बचन बोध मति मोरी॥
भिन भिन बचन कहे अर्थाई। जब मोरि बूझ समझ में आई॥
अब वह बर्नि बाक समझावो। पूछों जौन तौन दरसावो॥
स्वामी से पूछों इक बानी। सो बरतंत कहो सहदानी॥
अबिनासी पद कौन कहाई। उनकी आदि कहाँ से आई॥
तुम अबिनासी बर्नन कीन्हा। सो मोहिं भाखि सुनावो चीन्हा॥
केहि घर से अबिनासी आया। बासी बरन मूल कहा गाया॥
इनकी आदि कहाँ से आई। सो मोहिं कहिये ठौर सुनाई॥

---

(१) बिधि। (२) यानी = बाहन, [illegible]तलब "भरी हुई" से है।

कौन ठिकाने तन में बासा । सो कहिये यह भेद खुलासा ॥
आगे अंत कहाँ से आया । अबिनासी कस नाम कहाया ॥
कहँ को आदि अंत घर बासी । जासे भानु किरन अबिनासी ॥

(अबिनाशी का निरूपन)

(तुलसीदास बाच)

॥ दोहा ॥

सूरज ब्रह्म अकास में, भास भूमि परकास ।
किरन जीव यहि आत्मा, सब घट कीन्हो बास ॥

॥ सोरठा ॥

पिंड पिंड ब्रह्मंड में, अबिनासी रहे छाय ।
सभी सनातन यों कहे, आगे अगम अथाह ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

हे स्वामी मोरे मन माहीं । आगे भाखि कहो समझाई ॥
आगे का मोहिं भेद बतावो । स्वामी आदि समझ समझावो ॥
आगे कहो कहाँ है मूला । सो मोसे कहो आदि अतूला ॥

(तुलसीदास बाच)

सुनु हिरदे यह बरनि बयाना । मन चित से सुनिये दे काना ॥
धुंधूकार सब्द सुन माहीं । पारब्रह्म परमातम भाई ॥
धुन उनकी से आतम आया । सो अबिनासी नाम कहाया ॥

(हिरदे बाच)

धुंधू सब्द कहा सुन माहीं । अबिनासी आतम गति गाई ॥
यह तो समझि परी सहदानी । साहब के कहने से जानी ॥
धुंधू सब्द सुन्न के पारा । उनके परे कौन घर न्यारा ॥

॥ दोहा ॥

पार कहो घर कौन है, सब्द ब्रह्म से भिन्न ।
सो मोसे बरनन कहो, आदि अंत को चिन्ह ॥

॥ चौपाई ॥

धुंधू सब्द सुन्न के आगे। कहो उनको स्वामी केहि जागे ॥
तब तुलसी बोले सुनु भाई। आगे भाखूँ बरनि सुनाई ॥
चौथे पद सत साहब बासा। उनके अंस ब्रह्म परकासा ॥
सब्द ब्रह्म परमातम गाया। सो वहि सत्त पुरुष से आया ॥
वहि मालिक सतपुरुष कहाई। तिन से आदि ब्रह्म की आई ॥
सत्तपुरुष के पार ठिकाना। वहँ से है अद्भुत अस्थाना ॥
जिनको कोई संत पहिचाना। अगम निगम से अंत ठिकाना॥
ऋषी मुनी कोइ भेद न पाया। कहि कहि बेद नेत गुहराया ॥

॥ दोहा ॥

दस अवतारी ब्रह्म से, ब्रह्म पार के पार।
सो का जाने भेद यह, संत कहे निर्बार ॥

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे इक बिस्मै बोले। हे स्वामी यह बात अतोले ॥
हद बेहद के पार कहाई। यह नहिं कधी सुनन में आई॥
आप दया करि भाखें स्वामी। यह कहुँ भेद न अंतरजामी ॥
एक भरम मोरे मन माहीं। जाको बोध कहो समझाई ॥
सब में सास्तर बरनन बासी। पिंड ब्रह्मंड बसे अबिनासी ॥
परम हंस बेदांत सुनावा। कहे यहि नास कधी नहि पावा ॥
मीमांसा यह कर्म बस गावा। यह सुनि के मोहिं भरम समावा॥
उन अबिनासी बरनन कीन्हा। यह तो कहे करम बस लीन्हा॥
इनका भेद कहो समझाई। यह दोनों दो बात बताई ॥

॥ दोहा ॥

बेदांती कहे ब्रह्म यह, करम मीमांसा बाक।
यामें कहो काकी कहों, झूँठ साँच की साख ॥

॥ चौपाई ॥

यहि संदेह मोर मन माहीं। सो सब मोको बरनि सुनाई ॥

जो बेदांत कहे अबिनासी। करम माहिं की[1] भिन्न निवासी॥
तब तुलसी ने बचन सुनावा। सुनु हिरदे याका परभावा॥
काया काल करम के माहीं। उपजे मरे धरे तन भाई॥
करम भोग से काया पाया। बिना करम नहिं काया आया॥
पाँच तत्त जड़ चेतन गाँठा: रचि बैराट करम से ठाठा॥
यहि रचना ऐसे चलि आई। बिना करम नहिं उत्पति भाई॥
जो यहि नासमान होइ जावे। तौ कहो करम भोग को पावे॥

॥ दोहा ॥

अबिनासी आतम कह्यो, रह्यो करम के बंद।
उलटि न चीन्हा आदि को, बिन सतगुरु की संध॥

॥ चौपाई ॥

सास्तर कहे बेद जो गावा। फिर आगे को नेत सुनावा॥
जिनकी साखि सास्तर गावा। बिन जाने की साख सुनावा॥
जब बैराट में आतम आया। जेहि के पाछे बेद बनाया॥
सिंधु बुन्द काया में बासी। याको बेद कहे अबिनासी॥
आगे सिंधु भेद नहि पाया। जासु बुन्द बैराटी काया॥
बुन्द पाँच तत माहिं समाना। याको बेद बिराट बखाना॥
आगे बेद भेद नहि पाया। सास्तर में कहो कहँ से आया॥
आतम अंस करम के माहीं। सास्तर से रचना भइ भाई॥
जब जिव भया करम के संगा। दस इंद्री गुन तीन प्रसंगा॥
पाँच भूत का सूत बँधाना। जड़ चेतन आतम उरझाना॥
जहँ हिरदे यों बंधन आया। जुग जुग फिरे करम बस काया॥

॥ दोहा ॥

रस इंद्री गुन स्वाद से, बंधन भया अजान।
जान भुलानो आदि को, बादै जनम हिरान[2]॥

---

(१) या। [illegible]खोया।

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे बोले हे स्वामी । मन अचरज भया अन्तरजामी॥
जीव मूल तुम अन्त बताया । कस घर भूलि भँवर में आया॥
सो मोको भाखो बरतंता । कस सब कही सनातन संता ॥

(जीव का मूल को भूल जाना और भोगों में आशक्त होना)

(तुलसीदास बाच)

तब तुलसी कहे सुनो प्रसंगा । पाँच तीन में रचि रह्यो अंगा ॥
बिषै बासना में मन राचा । जक्त भोग से कोइ नहि बाचा॥
रस बस रीति जीति नहिं जानी । ज्यों माखी मद में लिपटानी॥
यों जिव रस माहीं मदमाता । इंद्री सँग रस भोग सनाथा ॥

॥ दोहा ॥

दस इंद्री रस भोग से, भूले मूल मुकाम ।
सदा रहे भव चक्र में, उलटि न बूझे धाम ॥

॥ चौपाई ॥

मूल भूल यों फाँस फँसानी । रँग रस भोग जनम जिव जानी॥
अब याका दृष्टांत सुनाऊँ । नकल बनाय असल दरसाऊँ ॥
ज्यों माखी मद रस में राजी । यों रस पगा जीव यह पाजी ॥
यहि यों भवसागर का लेखा । सहद कटोरा भरि करि देखा ॥
यों माखी उड़ि उड़ि के आवे । सहद कटोरे ऊपर छावे ॥
कोइ कोइ बैठि किनारे भाई । सब को देखि तमासा जाई ॥
रस पर पंख कभी नहिं लिपटे । कोइ पर पंख बचाये झपटे ॥
कोइ मतिहीन गिरे जो माहीं । जिनके पाँव पंख लिपटाई ॥

॥ दोहा ॥

एक फकीर अलमस्त जो, देखत ही मुसकान ।
यों जहान रस भोग में, पगे प्रेम रस खान ॥

॥ चौपाई ॥

जब फकीर को हँस्ते देखा । [illegible]लवाई मन कीन्ह बिबेका ॥

कहो मियाँ तू क्यों मुसकाना। हँसकर खड़े मर्म नहिं जाना ॥
जब फकीर बोला सुनु भाई। अचरज देखि हँसी उठि आई॥
जैसे सहद कटोरा माहीं। सब माखी उड़ि बैठी आई ॥
यहि लेखा खिलकत[1] का जाना। बिष रस सहद माहिं उरझाना॥
जो फाजिल साहब के प्यारे। सो तो देखें बैठ किनारे ॥
कोइ सोहबत अकले[2] उन माहीं। पंख पैर बचि खायँ मिठाई ॥
बेसहूर अकल के ओछे। बिष रस मोह ज्ञान के पोचे[3] ॥
धाय पड़े सो माहिं मिठाई। बुधि सुधि बिना पंख लिपटाई॥
कछू स्वाद मुख में नहिं आया। वे नाहक नर देहि गँवाया ॥
ज्यों माखी रस में उरझानी। यों मतिहीन जानिये प्रानी ॥
मीठे को जो मन ललचावे। वह भव सिंधु में गोते खावे ॥

॥ दोहा ॥

ज्यों माखी पर पाँव से, सहद माहिं लिपटाय।
ऐसे ही जग जीव जड़, झाड़ि बिषै रस खाय ॥

॥ चौपाई ॥

जब हिरदे पूछे परभावा। सब कहें बेद सनातन आवा ॥
सब्द नाद से बेद बतावें। सब मिलि यों करि करि गुहरावें॥
सुन्न सब्द तुमने भी भाखो। बेद सब्द की देवे साखी ॥
यामें कौन फरक है स्वामी। भाखे सब्द बेद सहदानी ॥
यह निरनै मो को समझावो। जो तुम कही बेद ने गावो ॥

(शब्द भेद)

(तुलसीदास बाच)

सुनु हिरदे यह भेद निनारा। सो का जाने बेद बिचारा ॥
सब्द सब्द में अंतर भाई। जो हम कही बेद नहिं पाई ॥
ओं सब्द बेद बतलावे। त्रिकुटी मद्ध माहिं से आवे ॥

(१) संसार। (२) बुद्धिमान। (३) खाली।

॥ दोहा ॥

गढ़ त्रिकुटी के मद्ध में, सब्द उठे ओंकार ॥
यह पुकारि बेदन कही, सुनु हिरदे निरधार ॥

॥ चौपाई ॥

ओंकार के पार ठिकाना। जहँ है सुन्न सब्द अस्थाना ॥
सो कहें संत सब्द सुख दाई। सो महिमा बेदन नहिं पाई ॥
ओंकार को नेत पुकारा। यह सुन सब्द बेद से न्यारा ॥
अंडा सुन्न में सैल कराई। सो वो सब्द परखिया भाई ॥
ओअं सोहं जाप सुनावा। सो सब ये माया परभावा ॥
वह तो सब्द सुन्न के माहीं। उलटे चढ़े अधर घर माहीं ॥
सो बूझे यह बाक बयाना। सतसँग से कोइ सज्जन जाना ॥
सब्द सब्द में भेद निनारा। यह परखे संतन का प्यारा ॥

॥ दोहा ॥

सुन्न सब्द वह अंत है, देखे सैल सिहार।
ओंकार त्रिकुटी बसे, सो कहे बेद पुकार ॥

॥ सोरठा ॥

निराकार से बेद, आदि भेद जानै नहीं।
पंडत करै उछेद[1], मते बेद के जग चलै ॥

॥ छन्द ॥

निराकार बेद पुकारि कहे, ओंकार से उतपति भयो।
त्रिकुटि मधि इक सब्द उठि, अस बेद ने बायक[2] कह्यो ॥
सुन्न को सबद बेहद में, इन भेद से न्यारो रह्यो।
सोई सनातन संत सब, लखि देखि सुख सुंदर गह्यो ॥
निराकार ब्याल[3] बिकार बायक, बेद मनमुख दुख दयो।
सब सृष्टि सासतर साखि राखे, जक्त यों बादे बह्यो ॥
सुभ असुभ अंक बढ़ाय बायक, करम बस जिव बँधि रह्यो।
सुधि बुधि बिसारी आदि अपनी, मूल तजि मारग लह्यो ॥

(१) तर्क, बिवाद। (२) कथन। (३) साँप।

बिधि बेद ने रचि त्रिस्त्र बंधन, बाक सुनि गुन गठि रह्यो ॥
अंदर हिये के तिमिर ज्यों, यों धुंध आँखिन पै छयो ॥
जैसे कटोरा सहद पर, झुकि झुंड माखिन को भयो ।
पर पाँव लपटि बिनासि काया, जीव माया बस बह्यो ॥
हिरदे सुनो जग जीव अस, यों बस बिषै में रचि रह्यो ॥

॥ सोरठा ॥

मद माखी दृष्टांत, सुने समझि कोइ भेद यह ।
गहे गुरन के बाक, साखि समझ हिरदे धरे ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

सब्द सब्द अंतर अरथाया । न्यारा न्यारा भेद सुनाया ॥
निराकार सब्द ओंकारा । ओं सब्द बेद बिस्तारा ॥
सुन में सब्द अगम से आवे । आदि पुरुष का सब्द कहावे ॥
यह सब समझ पड़ी सहदानी । साहब बरनन भाखि बखानी ॥
मुख भाखे पद परखि पिछानी । सब्द सब्द की न्यारी बानी ॥
सुन में सब्द संत समझाई । सो कहो राह मँजिल अरथाई ॥
ओअं की कस राह पिछानी । यह भी भेद कहो सब छानी ॥
ये दोनों की बाट बतावो । सो घर घाट मोहिं समझावो ॥

॥ दोहा ॥

कौन डगर ओंकार की, निराकार के बाक ।
सुन्न सब्द सत पुरुष का, बरनि सुनावो भाख ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

निर्गुन सब्द बेद बतलावे । सोई काल ओंकार कहावे ॥
तीन लोक रचना रचि राखा । सो जोगिन का पद अभिलाखा ॥
त्रिकुटी तेज अकास समाना । सो निर्गुन का है अस्थाना ॥
मुद्रा उनमुनि धरें समाधा । त्रिकुटी मद्ध पवन को साधा ॥

इँगल पिगल सुखमनि के माहीं । बंकनाल में पवन समाई ॥
त्रिकुटी तत्त जोति दरसानी । यह जोगिन का भेद बखानी॥
जहँ है निरंकार का बासा । मन ओअं कह्यो सब्द खुलासा ॥
ये जोगिन के बाक बिलासा । काल निरंजन का जहँ बासा॥
ओंकार सब्द समुझाई । हिरदे सुनियो कान लगाई ॥

॥ दोहा ॥

सुन्न सब्द संतन कहा, सो समझाऊँ भेद ।
खेद करम की सबन से, बसै बिन बाक अभेद ॥

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे सत सब्द लखाऊँ । जोग भेद से भिन समझाऊँ ॥
सुन्न माहि से सब्द जो आवे । सोई सब्द सत पुरुष कहावे ॥
चौथा पद बेहद के माहीं । सुन्न सब्द सोइ नाम कहाई ॥
ओअं सब्द काल को जानो । सुन में सब्द पुरुष पहिचानो॥
सब्द सब्द का भेद निनारा । सो कहि भाखि बरनि निरबारा॥

(मंज़िलों का भेद)

अब सुन मँजिल माल दरसाऊँ । संधि माहिं परबंध[1] लखाऊँ॥
पदम सुरति तिरबेनी घाटा । जहँ होइ जाय संत की बाटा॥
आठ महल अन्दर के माहीं । संत बिलास करें वोहि ठाँई ॥

॥ दोहा ॥

सत्त लोक सतपुरुष का, करे सुरति से ध्यान ।
सात गगन ऊपर चढ़े, जहँ सतगुरु अस्थान ॥

॥ चौपाई ॥

सत्त पुरुष सोइ सतगुरु गाया । जीव अंस सब व्हाँ से आया॥
तीन लोक निरगुन का घाटा । उन सब रोकि जीव की बाटा॥

जीव की निर्बलता—मतों की भूल भुलैयाँ)

जीव भुलाय[2] खाय उरझाई । बेबस है चौरासी माहीं ॥
जो कोइ सतसँग को मन चावे । काल ब्याल[3] होइ ताहि सतावे॥

(१) सिलसिला । (२) भूल । (३) साँप ।

कई उपाधि करे जिव साथा। मन की पकड़ न आवे हाथा॥
भरम भुलाय उठाय फँसावे। सतसँग यासे करन न पावे॥
मन बिकराल काल होय ताके। बेरस रहे रस में नहिं पाके॥
सतमत को निंदा करि भाखे। काल मते समझावे साखे॥

॥ दोहा ॥

कलजुग माहीं मति चले, नास्तिक होवे झार।
सो सिहारि मन में रहो, बेदन कही पुकार॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे बरनि बाक समझावे। यहि बिधि जन्म जीव भरमावे॥
पोढ़ होय सतसँग में आवे। जाके संग उपाधि उठावे॥
पानी पाहन देव पुजावे। ऐसे ले जिव को भटकावे॥
तीरथ बरत बँधावे आसा। काल कला जीवन को फाँसा॥
मुए मुक्ति फलदायक भाखा। अस गावे बेदन की साखा॥
आसा बंध होय फलदाई। जहँ आसा तहँ बास कराई॥
चेतन इष्ट दृष्टि से तोड़ी। तन मन प्रीति जड़न से जोड़ी॥
यों भवसागर भरा अथाही। अपने घर की राह न पाई॥

॥ सोरठा ॥

भर्म रहा संसार, सार भेद पाये बिना।
सुभ और असुभ कराय, काल चक्र भरमत रहे॥

॥ चौपाई ॥

यह बेदन ने किया खराबा। आसा अंग लगाय अड़ावा॥
त्रिसना तोप अनीति बनाई। गोला लोभ चलायो भाई॥
माया मोह कायागढ़ धारी। बिषे बन्दूक ताकि के मारी॥
बन्धन बान चले बहु भाँती। गुन गरनाल लगे दिन राती॥
गो[१] में बास गाँसि[२] मन राखे। तू मैं तोर मोर मन भाखे॥
तन मन जीव फिरे बन माहीं। भव भरमन[३] की चाल चलाई॥

(१) इंद्री। (२) घेर कर। (३) संसार में भटकना।

मन मकरंद[१] अंध यों आया । सब मिलि के यों बाँधि गिराया ॥
जड़ चेतन की गाँठि बँधानी । बंधन बसे चौरासी खानी ॥

॥ सोरठा ॥

काया गढ़ के माहिं, गो गुन मन राजा भयो ।
रह्यो काल की छाँहिं, हाय हिरस बस बँधि रह्यो ॥

॥ चौपाई ॥

हिरस हरकत कीन्हा वासिल[२] । मन बिष सँग जिव किया बेहासिल ॥
ऐसे जीव भया हड़काया[३] । ज्यों कूकर हड़ हाड़ चबाया ॥
सूखा हाड़ चूसि दिन राते । अपने मुख लोहू नित खाते ॥
ऐसा जक्त भया हड़काना । भव रस में घर भूलि भुलाना ॥
बिन सतसंग जक्त बौराना । लाभ हानि नहिं मूल पिछाना ॥
मूल भूल करि सूल सिहारा । यों ऐसे जिव बाजी हारा ॥

(संत शरन और सतसंग की महिमा)

संत दयाल चेत करवावें । सो सत बाक हृदय नहिं लावे ॥
दाता संत बड़े सुखदाई । परमारथ देइ दृष्टि लखाई ॥
लेइँ न देइँ करें उपगारा । सो चित में नहिं नेक बिचारा ॥

॥ सोरठा ॥

यह संतन के बाक, आँखि हिये सूझे नहीं ।
कहि कहि हारे थाक, जीव कहन माने नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

संत बिना कोइ भूल न छूटे । जासे पकरि पकरि जम लूटे ॥
बिना संत नहिं लगे ठिकाना । सब महातमा साखि बखाना ॥
जुग चारो कहते अस आये । कहें सब संत यही बिधि गाये ॥
तीन जुगन में नहिं निस्तारा । कलजुग संत लेइँ अवतारा ॥
तीनों जुग तप जोग बिचारे । राज भोग फल को अनुसारे ॥
कलजुग जुक्त संत अर्थावें । सुन हिरदे हिये माहिं बसावें ॥
उनके बचन सुरति सहदानी । हिरदे में मन लावे प्रानी ॥

(१) भँवरा । (२) मेल । (३) दुरदुराया हुआ ।

कहाँन अवाज आ कोइ बूझै। नर तन में आँखी से सूझै ॥
होइ निरधार पार पहिचाने। सतगुरु सत्त बचन करि माने ॥

॥ दोहा ॥

संत बचन सतगुरु कहैं, गहे जो चित मन लाय।
सहाय करे सुधि अंत की, सभी संत गुहराय ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे बिना सतसंग के, जिव जोनि में भटका फिरे।
बिन संत के नहि अंत आवे, खानि में गुरु बिन गिरे ॥
करनी करम फल भूल काया, ममत माया में घिरे।
कोइ ज्ञान बाक बिबेक कहे, अज्ञान से आगे भिड़े ॥
गुरु ज्ञान बिन बैराग उपजे, कोइ जतन मन ना थिरे।
ऐसो कुलाहल[1] कठिन यों, पल एक नहिं लावे बिरे[2] ॥
करि करि जुगत सब हारि थाके, नेक नहि पावे जिरे[3]।
पाले धरम जिव कर्म ये यों, भव नहीं हिरदे तरे ॥

(शास्त्रों का उलझेड़ा और उनको ठीक न समझने से खराबी)

॥ दोहा ॥

धरम बेद ने करि किया, करम बंध की टेक।
द्वैत भाव भरमाय के, नहि बूझा प्रभु एक ॥

॥ चौपाई ॥

करम धरम ने बन्धन डारा। पूजा पत्री नेम अचारा ॥
तीरथ बरत और चारो धामा। यह यों पाप पुन्न उरझाना ॥
लोभ दिखाय स्वर्ग समझावा। स्वर्ग भोगि भवसागर आवा ॥
पुन्न प्रभाव कहे समझाई। भोग भुगति चौरासी माहीं ॥
नर की देहि देव नहि पावे। स्वर्ग आस नर को बँधवावे ॥
नर तन दुरलभ देव न पावे। यह नर अधम स्वर्ग को चावे ॥
सुख सुर लोक में अधिक कहावे। तो सुर नर देही क्यों चावे ॥

---

(१) हल्ला। (२) बिरह। (३) जिरह।

यों नहि मूरख बूझै बानी। देव स्वर्ग तजि नर तन ठानी॥

॥ दोहा ॥

स्वर्ग छाँड़ि सब देव यह, नर तन माँगत झार।
यह बिचार मन में करे, तब पावे निरधार॥

॥ चौपाई ॥

सासतर ब्रह्म बेदांत बतावे। यहि पूजा कहो केहि की लावे॥
ब्रह्म अंस का सकल पसारा। सोई ब्रह्म देंहि निज धारा॥
सब्द ब्रह्म सब माहिं बतावें। स्रीमत[1] ऐसे साखि सुनावे॥
पिंड बैराट रूप भगवाना। आतम रूप कहें परमाना॥
फिर पाहन की पूजा लावे। सोइ अज्ञानी मनुष कहावे॥
चेतन तजि बाँधे जड़ आसा। धरम टेक बस करम निवासा॥
जो कोइ निरनै कहे बुझाई। बूझै न बैन चैन चित लाई॥
सो निंदा करिके मन माना। सासतर आतम कहे पुराना॥

॥ सोरठा ॥

आतम देव पुकारि के, सब पुरान गुहराय।
देहि देवल बैराट यह, पूज करो निरधार॥

॥ चौपाई ॥

देंहि देवल सब साखि सुनावे। आतम रूप पर्तिमा[2] गावे॥
जो तैं मूरति पूजि पखाना। यह नहिं पूजन कहे पुराना॥
याकी साखि संत नहिं गावें। नहिं पुरान पूजन बतलावे॥
याकी साखि समझि मन लावे। झूँठ साँच निरनै जब आवे॥
बिन सतसंग भरम नहिं जावे। सतसँग साबुन भरम छुड़ावे॥
जुग जुग का मन मैल मलीना। बिन सतसंग न आइ यकीना॥
सतसँग अंजन आँखि लगावे। जब कछु तिमिर नैन से जावे॥
ज्ञान उदै बिन भक्ति न होई। भक्ति बिना सब बुद्धि बिगोई॥

---

(१) भगवान। (२) प्रतिमा = मूर्ति।

॥ दोहा ॥

भक्ति भाव बूझे बिना, ज्ञान उदै नहिं होय।
बिना ज्ञान अज्ञान को, काढ़ सके नहि कोय ॥

॥ चौपाई ॥

सब सब में भगवान बतावे। चर अरु अचर माहिं समझावे॥
पाहन में परमेस्वर जाना। सब में कहे भाखि भगवाना ॥
पाहन को कस पूजो भाई। पूजन तो सबही की चाही ॥
स्री भगवान बसे सब माहीं। सब को तजि पाहन लौ लाई॥
जो तैं इष्ट दृष्टि में देखे। सब में जान बराबर लेखे ॥
मुख से एक सबन में भाखे। फिर दुरमति केहि कारन राखे ॥
यह नहिं इष्ट भाव का लेखा। दुरमति दृष्टि भाव से देखा ॥
सुनु उपासना की यहि रीती। एक भाव से पाले प्रीती ॥

॥ दोहा ॥

कूकर सूकर में कही, सब के माहिं समान।
और बसै अलगाय के, पूजन करो पखान ॥

॥ चौपाई ॥

गो गुन में मन राम कहाई। गोपी गो मन इंद्री माहीं ॥
क्रुस्न राम को धाम कहाई। मन तन सब में बास कराई ॥
सो यों मन इंद्री रस चावे। वहि मन को सब खोंट बतावे॥
भव रस माहि मुकर[1] में आसा। संख चक्र गदा पद्म निवासा॥
यहि महिमा रम राम कहावे। सोइ मुकर मन सब गुहरावे ॥
मन यहि बिषै बासना माहीं। सोइ सरगुन मन राम कहाई ॥
चेतन राम सबन में बासा। छाँड़े असल नकल की आसा॥
पाहन मूरति मनुष बनावे। टाँकी से गढ़ि गढ़ि के लावे ॥

॥ दोहा ॥

मूरति का करता कहो, को गढ़ि कीन्ह बनाय।
ताहि समझि हिरदे धरो, रहो चरन लौ लाय ॥

(१) दर्पन।

(अवतार स्वरूपों की कथा का अंतरी अर्थ)

॥ चौपाई ॥

जोइ बैराट रूप भगवाना। सोइ सब के तन माहिं समाना॥
याको छाँड़ि और मन लावे। सोइ प्रानी जड़ मूर्ख कहावे॥
जिन बैराट रचा सो न्यारा। वहि सबका है सिरजन हारा॥
निरगुन कहें निरंजन कोई। पिंड ब्रह्मंड रचा जिन जोई॥
जिनके आहि दसों अवतारा। गुन तीनों सँग साथ पसारा॥
सोइ नर देहि जक्त में धारा। इंद्री सँग मन करे बिहारा॥
मन तन सँग जड़ताई माहीं। यासे परख कोऊ नहि पाई॥
आप अपनपौ को नहिं चीन्हा। जासे जग में रहा अधीना॥

॥ दोहा ॥

आप अपनपौ ना लखा, भखा न सिरजनहार।
पार बिना भटकत फिरे, कस पावे निरधार॥

॥ चौपाई ॥

जीव तो अंस पुरुष से आया। निराकार रचि कीन्ही काया॥
जोति सरूप तेज उपजाया। यों जग माहि प्रगट भइ माया॥
जोति माहिं से भये भगवाना। तन धरि के प्रगटे जग रामा॥
सोइ इंद्रिन में करे निवासा। तीन गुनन में जग की आसा॥
सो भया मन इंद्रिन के संगा। भव रस भोग करे रस रंगा॥
तीन गुनन से आसा धारी। आसा अँग भव बात बिचारी॥
आसा आहि भरम को मूला। बासा करम संग सहे सूला॥
बोले राम सबन के माहीं। जड़ तत ने यों फाँस फसाई॥

॥ दोहा ॥

जोति सरूपी माहिं से, प्रगट भये भगवान।
सोई राम मन गुन गहे, सरगुन साखि बखान॥

॥ चौपाई ॥

आदि छाँड़ि जिव निरगुन आया। आदि अंस की सुधि बिसराया॥

निरगुन जोति तत्त उपजाया । पाँच तत्त संग धारी काया ॥
काया सँग अँग में उरझाना । आदि पुरुष की सुधि बिसराना ॥
भूलि पुरुष निरगुन को धावे । आदि पुरुष की सुद्धि न लावे ॥
निरगुन छाँड़ि जोति के संगा । तत्त बनाय बसा यों अंगा ॥
जोति अंस इच्छा भइ रानी । जीव भुलाय जोति अलगानी ॥
जोति छाँड़ जिव बाहर आया । जब तत पाँच धरी नर काया ॥
संग अजोध्या में अवतारी । दस इंद्री दशरथ मन धारी ॥

॥ दोहा ॥

जोति जीव बिसराय के, दसरथ पुत्र कहान ।
कुमति कौसिल्या मात सँग, भरत अंग उरझान ॥

॥ छन्द ॥

मन तन त्रिगुन की चाह चतुरगुन, गाँठि में बंधन भयो ।
निरगुन बरम्ह अपनी सता[1], सीता को हरि कर ले गयो ॥
रावन त्रिकुट के मद्ध लंका, बास में बसि के रह्यो ।
सत की सता सीता लये, दुख राम तन बन को सह्यो ॥
करे राम मोह बिलाप ममता, लच्छ लछमन को कह्यो ।
सीता गये का सोच सुधि, सुग्रीव चिन्ह पट[2] को दयो ॥
सन्मुख समुन्दर बाँधि मन, तजि अंग सँग अङ्गद लह्यो ।
तोड़े त्रिकुट चढ़ लंक गढ़, ब्रह्म की सता सीता लयो ॥

॥ दोहा ॥

रावन ब्रह्म त्रिकुट बसे, चढ़ मन राम जो धाम ।
सता ब्रह्म सीता लई, कीन्हा पूरन काम ॥

॥ चौपाई ॥

मन सो ब्रह्म भये अबिनासी । गहे निज मूल त्रिकुट के बासी ॥
संपादी[3] समपद मन गयऊ । इन्द्री गीध[4] गीध मन रहऊ ॥

---

(१) सत्ता = ताक़त । (२) कपड़ा । (३) नाम गिद्ध का जिसकी रामायन में कथा है ।
(४) बिंधना या पगना ।

जोति तजे मन भयो भगवाना। मन गीधे सोइ गीध कहाना॥
त्रिकुटी धाम चढ़े भगवाना। सो मन केवल ब्रह्म कहाना॥
जो भगवान भवन भव माहीं। गो पालन गोपाल कहाईं॥
गो में बिध गोविंद रहाया। तन मन गीधा गीध बताया॥
समपद को जो चीन्हें भाई। जिनका आवागवन नसाई॥
चेतन मूरति मन भगवाना। पूजै जड़ जड़ माहिं समाना॥

॥ दोहा ॥

सत्त पुरुष को जीव तजि, निरगुन भवन पिछान।
निरगुन छाँड़ि जिव जोति के, मद्ध भया भगवान॥

॥ चौपाई ॥

सो भगवान सबन के माहीं। जड़ चेतन में ठावें ठाईं॥
एक रूप सोइ भया अनेका। मन अपने में करो बिबेका॥
आदि एक अपनी को भूला। भया अनेक छाँड़ि तत मूला॥
चर और अचर खानि के माहीं। सब में देखो राम रमाईं॥
सोइ अपने में करो बिचारा। बोले सब में सिरजनहारा॥
लख चौरासी में तन धारा। उपजे मरे करम संसारा॥

(सतगुरु शरन बिना निर्बार नहीं हो सकता)

सतगुरु संत सरन जो आया। जिनका आवागवन नसाया॥
सुरति डोर सतगुरु में लाये। सो जिव आदि अन्त पद पाये॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल बिन, सब जिव काल चबाय।
बाँधि करम के बस रखे, सके न सूरति पाय॥

॥ चौपाई ॥

बिना सुरति नहिं लगे ठिकाना। सतगुरु संत बिना भरमाना॥
भेष संत नहिं बूझो भाई। संतन की गति अगम अथाही॥
जो वे मिलें जीव निरबारा। बिन उनके चौरासी धारा॥
जड़वत जीव भया जड़ताई। अपनी सुधि आपै बिसराई॥

यासे भूला आदि ठिकाना । जुग जुग जीव फिरे भरमाना ॥
सतसँग करने को कोइ चावे । पंडित भेष भूल भरमावे ॥
नेम अचार इष्ट की बातें । करि समझाय कहें बहु भाँतें ॥
यह सतसंग है जग के माहीं । बंधन जीव जानि उरझाई ॥

॥ दोहा ॥

ईसुर कर्म परमात्मा, मन तन मूल मिलाप ।
आप अपनपौ ना लखे, सुख दुख से संताप ॥

(एक सिद्ध की कथा)

॥ चौपाई ॥

अब याका परसंग बताऊँ । मूल भूल की साख सुनाऊँ ॥
गुरु चेला रमते कहुँ आई । जोगी सिद्ध रहे बन माहीं ॥
आसन कुटी धुनी के पासा । रात्रि आय जहँ किया निवासा ॥
फल फलहार खान को दीन्हा । भोजन कंद मूल का कीन्हा ॥
भोजन करि आसन पर आये । सिद्ध प्रनाम चरन सिर नाये ॥
पूछा सिद्ध कहाँ से आई । कहो कहँ कहँ की रमत कराई ॥
चेला सुनि के रहा अबोला । जब रमते में से गुरु बोला ॥
तीरथ चार धाम परसाया । नहिं कोइ सिद्ध नजर में आया ॥

॥ दोहा ॥

माया भगवत की बड़ी, को पावै परभाव ।
को लीला उनकी लखे, छल बल बहुर उपाव ॥

॥ चौपाई ॥

सिध सुनि के मन में मुसकाना । सिद्धन का इन मरम न जाना ॥
जोग करे जिन सिद्ध पिछाना । बिन सिद्धी नहीं सिद्ध कहाना ॥
जब चेला बोला सिध स्वामी । सिद्धी का कहो भेद बखानी ॥
मैं अजान हों तुम्हरो बारा[१] । पूछा कहो भेद निरबारा ॥
सिद्धी में कहो कहा दिखाई । भाखो भेद मोहि समझाई ॥

---

(१) अयाना ।

जब सिध बोल कही यह बाता । सिध सिद्धी संसार सनाथा ॥
जग राजी सिद्धी के माहीं । जो कोइ जानि परख जिन पाई ॥
तिलोंकी का नाथ कहाया । सिद्धो आहि जाहि की माया ॥

॥ दोहा ॥

जो तिरलोकीनाथ की, माया है बलवान ।
सो सिद्धी सिध सब कहें, आप रूप भगवान ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

चेला को गुरु यों समझावा । सिद्धी आहि कृतृम परभावा ॥
सिद्धी से कछु मुक्ति न होई । सिद्धी संत कृतृम कहें सोई ॥
ज्यों बाजीगर आम लगावे । परतछ अमिया आम देखावे ॥
चमड़े का करि साँप चलावे । सो सब के देखन में आवे ॥
डमरू को जो जानि बजावे । सब संसार तमासे आवे ॥
कौड़ी माँग उन खेल उठाया । डमरू बट्टे झोली नाया ॥
सरप चाम का चामै भइया । अमिया आम कछू नहि रहिया ॥
कौड़ी कौड़ी माँगि दुकाना । यों सिद्धी है कृतृम समाना ॥

॥ सोरठा ॥

ज्यों बाजी का खेल, झूठ पसारा कृतृम का ।
जब वो लेत समेट, सुपने सम जिमि खेल यह ॥

॥ चौपाई ॥

जब चेला बोले गुरुस्वामी । सत्त बात कहि अंतरजामी ॥
यामें नाहिं मुक्ति को काजा । तो काहे की सिद्ध समाजा ॥

(सिद्ध बाच)

सिध सुनि के मन में रिसियाया । क्या जाने सिद्धी की माया ॥
फजिर उठे कोइ खेल दिखाऊँ । सिद्धी माया का परभाऊ ॥
राति बीत जो भया बिहाना । सिध सिद्धी करने को ठाना ॥
चेला गुरू उठे दोउ भाई । हिरदे को तुलसी समझाई ॥

जग अंधा फंदा पहिचाने। जीव मुक्ति की खबर न जाने॥
मुक्ति छाँड़ि माया कृत माना। मुक्ति बिना चौरासी खाना॥

(हिरदे बाच)

॥ दोहा ॥

हिरदे कहे तुलसी सुन्यौं, गुरु चेला के बाक।
वोहि सुनाय फिरि के कहो, सिध सिद्धी की भाख॥

॥ चौपाई ॥

राति बीति कर भया बिहाना। सिध सिद्धी करने को ठाना॥
यहि बिधि तुमने कहन सुनाई। सो सब मन मोरे में आई॥
राति बात का कहो बयाना। सो भइ कहा समझि परमाना॥
गुरु चेला सिध की कहो बोली। सिध ने करामात क्या खोली॥

(तुलसीदास बाच)

कहे तुलसी हिरदे सुनि लीजे। करामात में करनी छीजे॥
जग संसार आँखि अँधियारी। करामात लगे सबको प्यारी॥
सिध सिद्धी करिके बतलावे। करामात में जक्त रिझावे॥
सिध कछु कीन्ह चुटकला भाई। बड़े जानि सब सीस नवाई॥
सिद्धी करि करि जनम बिगारा। मुक्तिन गये चौरासी धारा॥
जग रिझाय के आप बिगाड़े। बंधन बँधे काल के गाढ़े॥

॥ दोहा ॥

सिध सवाल अपना करे, करनी केर बिगाड़।
कर्म भाड़ में भुँजि मुए, पड़े खानि की खाड़[1]॥

॥ चौपाई ॥

जग रीझे कृतृम लख माया। सिद्ध बिगाड़ आप सुख पाया॥

(हिरदे बाच)

सिध बिगाड़ जग का सुख पाया। पुत्र कलित्र और धन माया॥
यह माया मोह बन्धन लीन्हा। अंत मुक्ति का काज न कीन्हा॥

(१) खड्डु।

माया मोह बहुत दुखदाई। यह सिद्धन से सिद्धी पाई ॥
सिद्धी ले बहु फाँस फँसाना। जन्म मरन नहि लगा ठिकाना ॥
यह लइ श्रास बास तन छूटा। चौरासी जम धरि धरि लूटा ॥
यह भी भये नर्क गति गामी। जग सुख में क्या लीन्हा स्वामी ॥

(तुलसीदास बाच)

जग संसार भँवर बहि जावे। काल जाल बस यों अस आवे ॥
माया मोह बँधाई आसा। सुख संपति ममता में फाँसा ॥
गये प्रान कछु संग न लीन्हा। ममता से मुक्ती नहि चीन्हा ॥
सब संसार जक्त जम जाली। करम बंद सँग फिरे बेहाली ॥
ज्यों बंदर बाजीगर बाँधा। यों चावे जिव करम इरादा ॥

(हिरदे बाच)

हिरदे कहे सबब सुनि स्वामी। दोउ बूड़े ये अंतरजामी ॥
सिध बूड़े करनी लुटवाई। मोह माया सिद्धी बतलाई ॥
सो सिद्धी में जक्त भुलाया। जुग जुग धरी करम बस काया ॥
कूकर सूकर में लिया बासा। सब संसार जक्त की आसा ॥
अब वह कथा कहो दरसाई। गुरु चेला सिध की समझाई ॥
भई राति बरतंत सुनावो। कस कस इन उनका बतलावो ॥

॥ दोहा ॥

इन उनकी कस कस भई, राति बात बरतंत।
सो बनाय मोसे कहो, का निकरा फिर तंत[1] ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह मन दुखदाई। यह मैं तैं की मान बड़ाई ॥
सिध सिद्धी कीन्हा अहंकारा। कोई चुटकला करन बिचारा ॥
निज निसि गई भई अधिराती। कीन्ह प्रसिद्ध[2] आगिन कइ भाँती ॥

---

(१) तत्त, मतलब। (२) जगाया।

चेला गुरु बैठे दोउ भाई। चर्चा सिध से करें बनाई।
चरचा में सिध से नहि हारा। जब सिध मन में कपट बिचारा॥
प्रबल प्रचंड अगिन कुटि माहीं। जरे देखि मन संका लाई॥
चेला गुरु उठि कर घबराने। कुटी जरे सिध मरम न जाने॥
सिध हँसते अपने मन माहीं। कपट भाव उनको भरमाई॥

॥ दोहा ॥

गुरु चेला उठि कर भगे, खड़े जो मारग माहिं।
देखे सिद्ध समाधि से, उठि के भागे नाहिं॥

॥ चौपाई ॥

सिद्ध समाधि से सिद्धी आई। कुवा उमँगि जल अगिन बुझाई॥
बिना डोल डोरी जल आवे। कुवा उमँगि करि कुटी बुझावे॥
सिध आसन पर बैठ रहाई। किर्तिम सिद्धी करि बतलाई॥
अगिन बुझे पर आसन आये। गुरु चेला दोउ अचरज लाये॥
यह बरतंत राति को बीता। सिद्ध दिखाई कपट प्रतीता॥

(हिरदे बाच)

यह तो भई समझि सोइ लीन्हा। आगे को कहो फिर का कीन्हा॥
फजिर भये का कहो बयाना। फिर सिध ने मन में कहा ठाना॥

(तुलसीदास बाच)

सिद्ध कहे कछु करि दिखलाऊँ। अचरज कुटी माहिं दरसाऊँ॥

॥ दोहा ॥

फिर मन में सिध के उठी, करि बतलाऊँ खेल।
रमते साधु सुभाव को, डारूँ नीचे मेल॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

रमते साधु सिद्ध की बाता। फिर कस भई कहो विख्याता॥
फिर सिध ने सिधि कहा जनाई। वह भी कहो मोहिं समझाई॥
गुरु चेला कहो रहे निवासा। की उठि गये फजिर कहँ बासा॥

(तुलसीदास बाच)

जब तुलसी बोले सुनु भाई । जो जस भई कहूँ समझाई ॥
उठि कर चले फजिर दोउ साधू । सिध सिद्धी करि कीन्हा जादू॥
बेनी बहे कुटी के माहीं । यह महिमा करिके दिखलाई ॥
साधुन को सिध कहत सुनाई । भया अचंभा देखो जाई ॥
कुटी माहि पूरन परयागा । देखि पुनीत रहो यहि जागा ॥

॥ दोहा ॥

साधु दोऊ उठि कर चले, देखि कुटी में जाय ।
तिरबेनी तीनों नदी, बहती अगम अथाह ॥

॥ चौपाई ॥

अचरज साधु बहुत मन लाये । भया अचंभा दोउ मुसकाये ॥
सिद्ध कहे तिरबेनी न्हावो । अपना जनम सुफल करि चावो ॥
साधु कहे हम बहुत अन्हाये । कलप बास करि व्हाँ से आये ॥
कुटी माहि तिरबेनी देखी । यह अचरज की बात बिसेखी ॥
चेला कहे गुरु फिर न्हावे । या में कहा गाँठि को जावे ॥
चेला गुरू किये असनाना । अचरज मन में भरम समाना ॥
करामात सिद्धों की माया । सो सिद्धों ने करि दिखलाया ॥
दोऊ गये करन असनाना । सिध सिद्धी कीन्हें पकवाना ॥
रुचि भोजन सब निपुन[1] बनाये । करि अस्नान साधु पुनि आये॥
बैठे जब पत्तल पर जाई । सब पकवान परोसे आई ॥

॥ दोहा ॥

एक फकीर चलि आइ के, ठहर कुटी के पास ।
स्वाल बचन कछु ना कहे, बैठे आय उदास ॥

॥ चौपाई ॥

सिद्ध कहे कहो कहँ से आये । कैसे बैठ रहे मुरझाये ॥
कहे सिद्ध कुछ खाना खावो । तो साईं तुमहूँ उठि आवो ॥

(१) उत्तम ।

कछु जवाब साईं नहिं दीन्हा। सिद्ध समझ करि पत्तल लीन्हा॥
पत्तल धरि साईं के आगे। फिर खाने को लावन लागे॥
बासन ढाँकि अँगोछा डारा। ह्वाँ से भोजन काढ़ि निकारा॥
जब साईं सिध सिद्धी जानी। समझि बूझि बोले नहिं बानी॥
पत्तल पर खाने को लाये। साईं के सन्मुख धरि आये॥
कछु फकीर ने ख्याल न कीन्हा। सिध मन में अचरज करि लीन्हा॥

॥ दोहा ॥

सिद्ध कहे साईं सुनो, धरा खान को पास।
सो खाना खावो नहीं, यों क्यों बैठ उदास॥

॥ चौपाई ॥

बैठे रहे कहो क्यों साईं। जो चहिये सो देउँ मँगाई॥
मियाँ कहे हमरी सुनि लीजे। गुनह करे मुरसिद नहिं रीझे॥
बिन मुरसिद नहिं खानाखावे। खावे तो यह गुनह कहावे॥
सिद्ध कहे मुरसिद कहाँ साईं। चाहो उनको लावो लेवाई॥
साईं कहे सुनु सिद्ध गुसाईं। मुरसिद ह्याँ आवेंगे नाहीं॥
वे दाता कहो कैसे आवें। उनके बिन खाना कस खावें॥
सिद्ध कहे कहो कहाँ बिराजे। करम[१] करें हमहीं पर आजे॥
साईं कहे इहाँ कहाँ आना। उनका होय कहूँ नहिं जाना॥

॥ दोहा ॥

नहीं मकान से उठि सकें, कहूँ न उठि कर जायँ।
रहें मकान के माहि वे, आठों पहर समाय॥

॥ चौपाई ॥

जब सिध पूछि कही हे साईं। मुरसिद का कहो ठौर बताई॥
कहो वह ठाँव कौन से ठाईं। दाता मुरसिद जहाँ रहाई॥
जब साईं बोले यह बाता। ह्याँ से बैठे देख दिखाता॥

---

(१) दया।

कुटी सामने बाग दिखावे। देखु निगाह नजर में आवे॥
खाना जबै दुरुस्त कहावे। बिन उनके खाना नहिं खावे॥

(सिद्ध बाच)

बाग मियाँ ह्याँ कहँ बन माहीं। कोसन पहाड़ उजाड़ दिखाई॥
जब बोले उठि के यों साई। कुटी सामने बाग दिखाई॥
बड़ा बाग सन्मुख दिखलावे। देखो बाग नजर में आवे॥

॥ दोहा ॥

तुम तो सिद्ध समाधि से, देखो नजर पसार।
दूर नहीं यहि पास है, मुरसिद मियाँ हमार॥

(सिद्ध बाच)

मियाँ बाग सन्मुख कहो, देखूँ नैन निहार।
कोसन पहाड़ उजाड़ है, यह कहो कौन बिचार॥

॥ चौपाई ॥

सिध को भया अचंभा भारी। यह कहो कौन कला बिस्तारी॥
करि निगाह देख चहुँ फेरा। दिखे न बाग भूमि सब हेरा॥

(साईं बाच)

बदन जहोर[1] आँखि अँधियारी। ऐनक एक फकीर निकारी॥
सिध लगाय तुम इसमें देखो। बगिया सन्मुख सुरति बिबेको॥
देकर ऐनक सुरति लगाई। बगिया तुरत नजर में आई॥
सिध मन में जब करे बिचारा। यह कहो कौन खेल करतारा॥
बैठा करि जुग जुग से ध्याना। सिद्धी भई और नहिं जाना॥
दृस्टि कधी बगिया नहिं आई। अचरज ऐनक माहिं देखाई॥

॥ दोहा ॥

ऐनक के परभाव से, बगिया दृस्टि दिखान।
रहे जुगन यहि भूमि पै, पड़ी नहीं पहिचान॥

॥ चौपाई ॥

कहे सिद्ध साईं तुम दाता। देखी नहीं सुनी यह बाता॥

---

(१) दुबला।

सो ऐनक में खोलि दिखाई। बड़े भाग से ऐनक पाई ॥
उठे सिद्ध साईं के साथे। बगिया देखन को सँग जाते ॥
कुत्ता सँग लाये थे साईं। सो पतरी[1] कुत्ते ने खाई ॥
गुरु चेला भोजन को खावे। देखन सिद्ध बाग को जावे ॥
चलि भये मियाँ सिद्ध के आगे। ऐनक सिद्ध आँखि में लागे ॥
चले बाट ऐनक से आवे। बिन ऐनक नहि बाट दिखावे ॥
ऐनक भई सिद्ध को दाता। ऐनक से सब खेल दिखाता ॥

॥ दोहा ॥

जब सिध ऐनक आँखि से, देखे निरखि निहार।
सब जब तो बगिया लखे, नहिं तो झाड़ उजाड़ ॥

॥ चौपाई ॥

कुत्ता पीछे भूँकत आवे। सिध संग जान मियाँ घुरकावे ॥
पहुँचे जाय बाग के पासा। बगिया चौकी सिंघ निवासा ॥
उठि कर सिंघ सिद्ध पर डाका। जब फकीर सिंघ ऊपर ताका ॥
पंजा धरे सीस पर जाई। सीतल सिंघ रहा मुरझाई ॥
बगिया के मारग को चाले। सिद्ध बाग पर कीन्हा ख्याले ॥
बाग बृच्छ फूली फुलवारी। देखा बाग बड़ा बन भारी ॥
आस पास बगिया चहुँ फेरा। बहे बेनी अति गहिर गँभीरा ॥
मैं बेनी कितिम दिखलाई। यह तो बेनी अगम अथाही ॥
सिध अचरज मन माहि बिचारा। मैं सिद्धो को देखि निहारा ॥

॥ दोहा ॥

जोग कस्ट करि करि थके, अचरज ऐनक माहिं।
सहज भाव देखत रहूँ, समझ पड़े केहि ठाँहि ॥

॥ चौपाई ॥

आगे चले बाग के नाके। जोगी जती सिद्ध जहँ थाके ॥
द्वार बाग पर रहै भुजंगा[2]। वह डसि खाइ जाइ जेहि अंगा ॥

---

(१) पत्तल। (२) साँप।

भीतर से सन्मुख को दौड़ा। फन फटकारि फिरे चहुँ ओरा ॥
बड़े बड़े जाने नहि पावें। जोगी सिद्ध तुरत बगदावें[1] ॥
साईं देखि भुजंग फन डारा। भीतर बाँबी माहि सिधारा ॥
साईं सिधि संग आगे चाले। परिमल[2] उठे सुगंधि रसाले[3] ॥
भँवर पोहप से बहु लिपटाने। निर्मल गंध बास उरझाने ॥
परम पुनीत भूमि बहु भाँती। सोभा कहूँ कही नहिं जाती ॥
निर्मल बास भूमि सब जागे। बृच्छ बृच्छ सूरज फल लागे ॥

॥ दोहा ॥

तरु तरु फल सूरज लगे, कहा कहुँ तेज प्रभाव।
उदे होत रबि बृच्छ पै, कहा कहुँ अगम अथाह ॥

॥ चौपाई ॥

सूरज फल बृच्छन पर होई। सोभा कहा कहे भल कोई ॥
आगे गये बाग के माहीं। मियाँ कहे सुनियो सिध भाई ॥
तुम तो रहो ठहर यहि जागे। मैं साइं से मिलिहौं आगे ॥
हुकुम हुए पर मैं ले जाओं। साईं दाता दीदार कराओं ॥
साईं साईं के पास सिधारे। साहिब मियाँ अगम से न्यारे ॥
मंदिर मठ अंदर के माहीं। मद्ध बाग मुरसिद को ठाईं ॥
मिले मुरीद पैर सिर दीन्हा। मुरसिद तुरत अंग में लीन्हा ॥
कदमअली[4] कहे मुरसिद प्यारे। सिध आये इक करन दिदारे ॥
मुरसिद कहें उन्हें ले आवो। तुम दहसत[5] दिल में जिन खावो ॥
तुरत सिद्ध को लीन्ह बोलाई। कदमअली ले पहुँचे जाई ॥

॥ दोहा ॥

सीस कदम ऊपर धरे, सिद्ध लिया अपनाय।
मियाँ कहे मुसकाय के, क्योंकर पहुँचे आय ॥

॥ चौपाई ॥

हाथ जोड़ के सन्मुख ठाढ़े। कदम अली बन्धन से काढ़े ॥

---

(१) भरम जायँ। (२) अचरजी सुगंधवाली। (३) रस की खानि। (४) नाम साईं यानी मुरीद का। (५) भय।

मेहर बड़ी मुरसिद ने कीन्हा। दीन्ही काढ़ि एक दुरबीना ॥
सिध मुर्रसिद का देखे नूरा। हीरा चमके तेज जहूरा ॥
मुर्रसिद कहे सुफल कर लेखो। यह दुरबीन ताकि कर देखो ॥
सिध ने ले दुरबीन चढ़ाई। ऐसे बाग अनेक दिखाई ॥
बाग पार जब ताकन लागे। सहर एक सब बागन आगे ॥
सिद्धि वहाँ की क्या कहे कहेनी। महलों महल बहे तिरबेनी ॥
सिध अपनी सुधि बुद्धि बिसारी। यह तो गति ऐनक से न्यारी ॥

॥ दोहा ॥

जब ऐनक को देखि कर, कहते अगम अथाह।
यह दुरबीन के सामने, ह्याँ कछु लगे न थाह ॥

(कदमअली बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनो सिद्ध यह बात गुसाईं। सँग ऐनक देकर ह्याँ लाई ॥
हम मुरसिद दीदार करावा। जब मुरसिद के दरसन पावा ॥
सँग मुरसिद होइ बाट बतावें। बिन सँग मुरसिद बाट न पावे ॥
दे दुरबीन वे आगे चालें। तो वोहि देख पड़े सब ख्याले ॥
सँग उन बिन दुरबीन लगावो। तो आगे नहिं जाने पावो ॥
बिन हम सँग तुम ह्याँ नहिं आये। सँग मुरसिद ले जायँ लिवाये ॥
इत दुरबीन उत ऐनक भाई। संग बिना कोई नहिं जाई ॥
मोको हुकुम करें सँग जाऊँ। तो सँग जाय खेल दिखलाऊँ ॥
बिना हुकुम नहिं पैर उठाऊँ। मुरसिद मेहर हुकुम से जाऊँ ॥

॥ दोहा ॥

सिध कहे कदमअली सुनो, तुम बतलाया ठौर।
बिना मिले तुम से जभी, कहूँ और की और ॥

॥ चौपाई ॥

तुम तो हो गुरु पीर हमारे। तुम्हरी दया देख दरबारे ॥
इहाँ कहो को आने पावे। तुम सँग भये बिना को आवे ॥

अब तुम कहो सोई बिधि जानूँ। हुकुम होय सोई मैं मानूँ ॥
तुम लाए दुरबीन दिवाई। इतनी सैल मेहर से पाई ॥

(कदमअली वाच)

अब तुमको इक अकिल बताओं। ले दुरबीन मियाँ पै जाओ ॥
मियाँ कदम पर सीस लगावो। हुकुम करैं सोइ सीस चढ़ावो ॥
ले दुरबीन मियाँ पै आये। जेहि बिधि कदमअली फरमाये ॥
जस जस कही वही बिधि कीन्हा। ले दुरबीन कदम धरि दीन्हा ॥

॥ दोहा ॥

सिद्ध सुनो मुरसिद कहे, ऐनक औ दुरबीन।
दोनों के मध में रहो, ल्यो मकान को चीन्ह ॥

॥ चौपाई ॥

जब दुरबीन के ऊपर जावे। संग लिवाय तुम्हें ले आवे ॥
अब तुम जाव कुटी के माहीं। ऐनक को नित निरखो भाई ॥
नित की सैल करो दरबारा। तुम हर वक्त करो दीदारा ॥
हुकुम लिया सिध मुरसिद केरा। कीन्हा आय कुटी पर फेरा ॥
गुरु चेला भोजन करि बैठे। देखा जाय कुटी में पैठे ॥
जो ऐनक मुरसिद से पाई। देखे नित ऐनक के माहीं ॥
दर्सन नित मुरसिद के पावे। सीतल भये दया से आवे ॥
मारग गये गुरू औ चेला। नित नित आवे जाय अकेला ॥

॥ दोहा ॥

नित प्रति दरसन मैं करूँ, नहिं कोइ परख पिछान।
अगम बास नित कर बसूँ, नहिं पावे कोइ जान ॥

॥ चौपाई ॥

इक दिन गये सिद्ध दरबारा। चलो मियाँ कहे करो दिदारा ॥
सँग ले मियाँ सैल करवाई। भाखूँ रमक रेखते माहीं ॥

(रेखता)

अकल बुजरुग[१] सिखाते हैं। कोई दिल में न लाते हैं ॥

---

(१) बुजुर्ग = बड़े, पूज्य।

मझब मुरसिद बतावेगा। अरस[१] अकसीर[२] पावेगा॥
समझ कोइ नूर का प्यारा। जहूरे में दिखा सारा॥
सुई के द्वार नाके में। ऊँट जाते हजारों हैं॥
पुखत[३] हैं छाँह धूपों के। लदे दो दो सँदूकों के॥
उसी संदूक में अंडे। वजन भारी चले ठंडे॥
उन्हीं अंडों के अन्दर में। मिहीं आकार अंडा है॥
कहूँ उनमान क्या उसका। अगर दाना जो खसखस का॥
उसी दाने में है रसता। अँदर उसके सहर बसता॥
करे कोइ ख्याल फहमीदे[४]। जिगर अंदर खुलें दीदे॥
अगर आदम कोई इक था। हकीकत सुन खड़ा हँसता॥
दिलों में ना हुई हाजम[५]। जिकर सुनना नहीं लाजिम॥
सिया सुन्नी[६] न था मालुम। बिगर ईमान का आलिम॥
उसे सुन के हुआ ताजुब। कही उन बात बेवाजिब॥
कुफर बेफहम[७] फरमाई। नहीं आकीन[८] में आई॥
दहरिया का मझब[९] जाना। मुकर[१०] यह कहन कुफराना॥
नहीं इतबार आता है। ऊँट सुइ में समाता है॥
एक पोस्ते के दाने में। सहर क्योंकर समाना है॥
अगर यह बात सुनने में। तसल्ली दिल न लाता है॥
सुभा[११] सुन के समाती है। नहीं अंदर में आती है॥
सरे[१२] रसते चले जाते। मारफत[१३] के मँजिल माते॥
अगर उसकी सुनी बातें। किया कायल कई भाँतें॥
मुकर कर थे खुदा बंदे। कही दुनिया के ये गंदे॥
अकिल तरकीब ठहरावें। सबर सोहबत खबर पावें॥

---

(१) अर्श = सहस दल कमल। (२) कीमिया, रसायन। (३) पक्के। (४) समझदार। (५) हाज़मा। (६) मुसलमानों की दो बिरुद्धतड़ शीआ और सुन्नी हैं। (७) नादान। (८) यक़ीन। (९) नास्तिक का मज़हब। (१०) आईना, ऐनक, अंतर दृष्टि। (११) शुबहा। (१२) ऊपर, सीधे। (१३) ज्ञान।

कभी यह बात नहिं कहना। सबब सुन के समझ लेना ॥
बुजुर्गों के बचन माहीं। असल को ऐन[1] ठहराई ॥
उसे बूझे समझ करके। खुलें आँखें मुकर करके ॥
जधी ईमान में आवे। अकीदा[2] ऐन में पावे ॥
मिले महरम[3] उसी का जो। कहेंगे हाल ज्यों का त्यों ॥
अबे सुन ले समझ सारी। कहूँ मैं बात बिस्तारी ॥
दरक्खत[4] एक है उलटा। कधी होवे नहीं सुलटा ॥
अगर वह पेड़ अड़बड़ का। तले डारी अधर जड़ का ॥
फूल फल भी उसे आवे। मरम महरम वही पावे ॥
उसी में वह गुपत[5] रसता। सुबह से साम लों चलता ॥
वहीं सुई द्वार दिखलावे। ऊँट जाते नजर आवे ॥
अंड खसखस का दाना है। कहूँ उस का बयाना है ॥
पहाड़ आड़े कहे तिल के। फरक परदे खुले दिल के ॥
दिखे दुरबीन में रसता। मुकर अंदर सहर बसता ॥
अगर कोइ तलब[6] को चावे। तिलों का खोज कर पावे ॥
वहीं खसखस का दाना है। तिलों के में समाना है ॥
पेड़ इतना बड़ा बड़ का। उसी बीजे में से कढ़ता ॥
डार और पात जड़ छिकला। मिहीं दाने में से निकला ॥
अगर सुन के खबर खोजे। ऐन के भेद में चोजे[7] ॥
कहें तुलसी रसीला है। अजब कुदरत की लीला है ॥

॥ ग़ज़ल ॥

खसखस के दाने के अंदर सहर खुदा का बसता है।
कस्द करे ऐनों के तिल में वही तो उसका रसता है ॥
रूह रकाने में ठहरावे सोई मुकर में धसता है।

(१) आईना, ऐनक, अंतर दृष्टि। (२) विश्वास। (३) भेदी। (४) पेड़। (५) गुप्त, छिपा हुआ। (६) जिज्ञासा। (७) बिलास।

सैल करे दाने के भीतर सो मुरसिद अलमसता है ॥
कहे मझब[1] मासूक की बातें डगर दिलों के बसता[2] है ।
बड़ा माल जोरावर घर का किया खरीदी ससता है ॥
बाँके बड़े खड़े लड़ने को सोई कमर को कसता है ।
बिना मेहर महरम की सोहबत यों क्यों नाहक पचता है ॥

॥ चौपाई ॥

बिन मुरसिद सब पचि पचि हारे । मुरसिद ने सब काज सुधारे ॥
सिध सिद्धी बहु किये अनेका । पुनि पाया मुरसिद से ठेका ॥
मुरसिद मुकर जाल से फेरा । मेहर नजर करि मुझ पर हेरा॥
जब देखा यह खेल बिलासा । छूटी यहि जहान की आसा ॥
अब दिल रहा मझब के माहीं । झूठ जहान खिलकत की राही॥
सब सरियत[3] ने राह बिगारा । मियाँ मारफत किये दिदारा[4] ॥
जो सरियत को सच करि जाने । बिना मूल सब भूलि हिराने॥
यह जहान की उलटी बातें । मारें मुकर फिरिसते लातें ॥

॥ सोरठा ॥

खिलकत जहान मुकाम का, झूठा है सब काम ॥
मुरसिद महरम मझब से, देखि मुकर को माँज ॥

॥ चौपाई ॥

कहे तुलसी हिरदे सुनु बानी । सिध ऐनक दुरबीन पिछानी॥
ऐनक औ दुरबीन लगाई । रमक[5] रेखते माहिं सुनाई ॥
सिध सिद्धी संसार भुलाना । महरम भया मझब जब जाना॥
जब हिरदे पूछा अहो स्वामी । ऐनक का कहो भेद बखानी ॥
ऐनक कौन कहो समझाई । भाखी आप परख नहिं पाइ ॥

(तुलसीदास बाच)

सब संतन ने भाखि सुनाई । सब्दन माहिं दीन्ह दरसाई ॥
ऐनक आँखि ताकि कर देखा । जब कछु सूझा बूझ बिबेका॥

(१) मज़हब । (२) वस्त = मध्य । (३) कर्म-कांड । (४) दर्शन । (५) जरा सी ।

हिये नैन दुरबीन दिखावे। जब आगे की सुधि बुधि पावे ॥
बहुत नजीक दूर बहु भाई। जाने मँजिल राह जिन पाई ॥

॥ दोहा ॥

यह ऐनक है अलख की, खलक पार के पार।
जिन निहार अंदर लखे, भखे सो भेद अपार ॥

॥ चौपाई ॥

जब सतगुरु की किरपा पावे। तब यह बात समझ में आवे॥
बिन सतसंग न पावे चीन्हा। सतसंग से लखि आइ यकीना ॥
सो सतसंग सब्दन के माहीं। संत सब्द में दीन्ह दिखाई ॥
जो कोइ बिरही जिव अनुरागी। परमारथी पीर[1] के रागी ॥
सो सज्जन मारग कछु पावे। पचि पचि मरें हाथ नहिं आवे ॥
जब कहुँ उनकी मेहर मझावे[2]। दया करें वाँह जीव छुटावे ॥
बिरह बिना नहिं दया समावे। दया धरन को जगह न पावे ॥
कहो कैसे उपकारी लेई। सुने समझ नहिं हिरदे जेई ॥

॥ दोहा ॥

सुनि समझे सत सजन की, मन दौड़ावे आप।
कहो खाप[3] कैसे लगे, ले ले लंबी नाप ॥

॥ चौपाई ॥

मन से भर्म निकारि नहि पावे। कहो कैसे सतसंग समावे ॥
आसा अंग भंग करि देई। यों भीतर रस जाय न जेही ॥
यह मलीन मन चोर न पावे। जासे खोज खतम होइ जावे ॥
अपनी आसा बुझे न भाई। सतगुरु को दे दोष लगाई ॥
मारग यह संतन का झीना। बिन सतसंग नहिं आय यकीना ॥
मेहर धरन को बरतन चावे। सो तो नेक समझ नहिं आवे ॥
बिरह होय तो भर्म उड़ावे। जग की रीति नेक नहिं भावे ॥
बिरह उदास आस के आगे। मन से भर्म रोग जब भागे ॥

(१) गुरु। (२) खोजे। (३) जमीन की पैमाइश का एक पैमाना लकड़ी का जो कान तक ऊँचा होता है।

॥ दोहा ॥

की तो यों करनी करे, की सतगुरु बिस्वास।
बास बसे सूरति चरन, तन मन होय निरास ॥

॥ चौपाई ॥

जो अपना मन मूल न माने। तो सतगुरु के चरन पिछाने ॥
मन बस नाहि चरन नहिं जाने। यों सब जग यह भाड़ भुँजाने ॥
सतगुरु साखि सबै मिलि गावे। अपने हिरदे साँचि जो आवे ॥
जब बिस्वास बसे मन माहीं। कर्म करज से लेत सुरझाई ॥
यह वह दोनों में इक नाहीं। बेबिस्वास आस के माहीं ॥
जब हिरदे बोले हे स्वामी। दो में एक परख ले छानी ॥
एक तरफ बिन फ़रक न होवे। फिर समझे सिर धुनि के रोवे ॥
आज काज करि होय अकाजा। फिर नहि यहि नर तन को साजा ॥

॥ दोहा ॥

चेतन तन में ज्ञान है, जड़ तन में अज्ञान।
फिर भरमत भव भव फिरे, नहिं कछु लगत ठिकान ॥

॥ चौपाई ॥

यह सब बात परखिया बानी। स्वामी के कहने से जानी ॥

(तुलसीदास बाच)

हे हिरदे सतगुरु केहि काजें। जीव उबारन जक्त बिराजें ॥
हंस होय जो करे पिछाना। उन सतगुरु की महिमा जाना ॥
आदि अनादि संत गुहरावें। सतगुरु बिना पार नहिं पावे ॥
सास्त्र कहे और बेद पुराना। महिमा सतगुरु बरनि बखाना ॥
और महातम सब गुहरावें। सतगुरु साखि समझि सब गावें ॥
कोटिन जिव यह करे उपाई। सतगुरु बिना राह नहिं पाई ॥
जुग जुग भरमत भये अनेका। जिन भाखा जिन सतगुरु ठेका ॥

॥ दोहा ॥

सतसंग अरु संतन कही, स्रुति पुरान गुहराय।
सास्तर सब महातम[१] कहे, सतगुरु का रे उपाय ॥

(हिरदे बाच)

॥ चौपाई ॥

स्वामी कही समझ में कीन्ही। बानी बचन बूझि के लीन्ही ॥
जो जो बाक काढ़ि मुख भाखा। कहने में कछु फेर न राखा ॥
कोइ मूरख जिव मन में लावे। हिये सतगुरु का बचन बसावे ॥
अब वह बहुरि कहो समझाई। गुरु चेला बरतंत सुनाई ॥
रमत गये पर फिर भी आये। सिद्ध कुटी पर बहुरि सिधाये ॥
तुलसी हिरदे को रे सुनाये। बीत मास नौ पीछे आये ॥
कुटि के माहिं जाइ के बैठे। बहुत प्रेम करि सिध से भेंटे ॥
सिध सब पूछि कहो कुसलाता[२]। करी बहु रमत[३] लगा कछु हाथा॥
तीरथ करे ज्ञान सुनि आये। नहि कछु और हाथ में लाये ॥
ज्ञान सुने अज्ञान न भागा। तीरत करत फिरे बहु जागा ॥
चेतन तो तुम चीन्हे नाहीं। जल में न्हात फिरे बहु ठाँईं ॥
चेतन तन में बास कराई। जाका खोज कीन्ह नहि भाई ॥

॥ दोहा ॥

चेतन ब्रह्म बैराट यह, आतम तन के माहँ।
तुम बाहर खोजत फिरे, जासे लगा न थाह ॥

॥ चौपाई ॥

रमता में से गुरु कहे बोली। तुम कछु भेद बतावो खोली ॥
सिद्धी को हम मानें नाहीं। राह मुक्ति की कहो समझाई ॥
भटकत फिरे भये हैराना। मुक्ति राह की जुक्ति न जाना ॥
पैर थके कछु मरम न पाया। भरमत फिरे दुखित भइ काया ॥

(१) महिमा। (२) खैरियत। (३) जात्रा।

अब कछु जीव मुक्ति दरसावो । अब हमरी भव भटक मिटावो ॥
जब सिध कहे मुक्ति कहा कीजे । जीवत जीव मुक्ति लखि लीजे ॥
मुक्ति जुक्ति से भेद निनारा[१] । सो पावे संतन का प्यारा ॥
सतसँग करे तोड़ के आपा । धनुवाँ खैंचि चढ़ावे चाँपा[२] ॥

॥ दोहा ॥

सुरति चाँप धनुवाँ चढ़े, कढ़े गगन के पार ।
ऐनक आँखि लगाय के, देखे बिमल बहार ॥

॥ चौपाई ॥

सो ऐनक मुरसिद से पावे । मेहर करें जब दया बसावे ॥
जब ऐनक में पैने[३] भाई । मुक्ति जुक्ति की कौन बड़ाई ॥
देखे सैल अपूरब आँखी । मुक्ती ज्ञान रहे सब थाकी ॥

(रमते बाच)

सो ऐनक किरपा करि दीजे । जिव मारग को कारज कीजे ॥
हमहूँ बहुत फिरे चहुँ ओरा । जीव जतन कछु किया न ठौरा ॥
मुख तुम्हरे ऐनक सुनि पाई । मेहर दया सिध करो गुसाईं ॥

(सिद्ध बाच)

अब आये बिसराम करैये । फजिर हुए पर फिर कछु कहिये ॥

(रमते बाच)

बेनी कुटी करन असनाना । अज्ञा करो हुकुम परमाना ॥

(सिद्ध बाच)

॥ दोहा ॥

सिद्धी की बेनी हती, सो तो गई बिलाय ।
डोल पड़ा है कूप पर, यहि जल लेवो न्हाय ॥

॥ चौपाई ॥

सिद्ध कहे कछु भोजन कीजे । फल फलहार खान को लीजे ॥

---

(१) न्यारा । (२) ताँत जिसे खींच कर धनुष चढ़ाते हैं । (३) धस जाय ।

(रमते वाच)

जब भोजन पकवान कराये। अब कहो कहा कहा ले आये ॥

(सिद्ध वाच)

वे सिद्धी से थे पकवाना। सो गया छूटि सिद्धि सरधाना[१] ॥
अब ऐनक का ऐन बिचारा। या में देखि जीव निरबारा ॥
रमते ने भोजन जब कीन्हा। रहे रात बिसराम जो लीन्हा ॥
फजिर हुए पर पूछि पचारी। ऐनक की कहो बात बिचारी॥
कदमअली इतने में आये। हमसे मिले बहुत सुख पाये ॥
कदमअली से अरजी कीन्हा। रमते पर करो मेहर यकीना ॥

॥ दोहा ॥

कदमअली बोले सुनो, बिन सोहबत नहिं हाथ ॥
सोहबत करि पावे सोई, नहीं सहज की बात ॥

॥ चौपाई ॥

जब रमते पैरों सिर दीन्हा। मुरसिद सरन तुम्हारो लीन्हा ॥
होइ दयाल ऐनक दिखलावो। मेरे तन की तपन बुझावो ॥
कदमअली के दिल में आई। दे ऐनक उसको दिखलाई ॥
दो ऐनक दोनों को दीन्ही। देखो परखि पड़े जो चीन्ही ॥
ऐनक दोनों दीद लगाई। देखो सो कहो भाखि सुनाई ॥
गुरु को तो संसार दिखाना। खिलकत दीदे दीद जहाना ॥
जितने मनुष देह तन धारे। सो दीखे पसुवत[२] सब सारे ॥
मनुष देह तो दोइ दिखाई। की ये सिध अरु दूजे साईं ॥

॥ दोहा ॥

गुरु ऐनक को देखि कर, भाखि कहे ये बैन।
नहिं जग में नर देह दिखे, कूकर काग बेचैन ॥

॥ चौपाई ॥

जो रमते गुरु को दिखलाना। समझ पड़ा सोइ भाखि बखाना ॥

---

(१) भाव। (२) जानवर सरीखे।

नर चोला खिलकत में नाहीं। खोज किया ऐनक के माहीं ॥
यह तो गुरु ने भाख बयाना। अब चेले का सुनो बखाना ॥
सब दिस पहाड़ जले चहुँ फेरा। अगिन प्रचंड चक्र का घेरा ॥
उसके मधि में जाइ घिराना। नहिं ह्वाँ बाट पड़े पहिचाना ॥
मैं घबराय फिरयों चहुँ ओरा। नहिं भागन की बाट बहोरा ॥
देखा कूप एक वहि ठाईं। उसमें कूदन को मन चाही ॥
उसके मधि में बैठ भुजंगा[1]। खावन चहे फाड़ि मुख अंगा ॥

॥ दोहा ॥

जो भुजंग रहे कूप में, खाने को मुख फाड़।
कहा बिचार मन में करौं, ले धरि चाभे डाढ़ ॥

॥ चौपाई ॥

यह निहार चेला कहे बानी। और कहूँ जो परख पिछानी ॥
एक उपाय कीन्ह मन माहीं। कूप किनारे दूब रहाईं ॥
दूबै पकड़ि कूप लटकाना। बृच्छ किनारे रहे निदाना ॥
वहिं पर मधुमाखी का छाता। उड़ि के लागि बदन को खाता ॥
सहद बूँद टपके मुख माहीं। मीठा लगे और दुखदाई[2] ॥
चूहे जुगल कूप के माहीं। हर दम दूब कतरि के जाई ॥
जब मैं गिरा कूप के माहीं। सो बरतंत कहा समझाई ॥
यह ऐनक में दिखा तमासा। सो कहूँ भाखि आप के पासा ॥

॥ दोहा ॥

साईं सुनि मुसकाय के, कही बहुरि इक बात।
दोनों गुरु चेले सुनो, समझ लिया बिख्यात ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु चेले बोले हे साईं। यह कछु समझ माहिं नहिं आई ॥
यह कहो कौन चरित्तर देखा। याका कहिये बरनि बिबेका ॥

---

(१) साँप। (२) सुखदाई ?

(कदमअली बाच)

ऐनक दोउ हमको दे दीजे । फिर हम कहें बरनि सुनि लीजे ॥
ऐनक दोउ दोनों ने दीन्हा । कहिये साईं भेद यकीना ॥
जब साईं बोले सुनि लीजे । हम कहें कहन माहिं चित दीजे ॥
नहिं ऐनक सतगुरु पहिचाना । सो नर मरे पसू भये खाना ॥
जो नर मरि नर देहि न पावे । चौरासी पसु कीट समावे ॥
दो नर दिखे साईं सिध साँगी[1] । सो सतगुरु मुरसिद अनुरागी ॥

॥ दोहा ॥

मुरसिद सतगुरु चरन का, आठ पहर अनुराग ।
सो भागे भवचक्र से, उनको लगा न दाग ॥

॥ चौपाई ॥

यह मुद्दा गुरु को दरसाया । कदमअली कहि कर समझाया ॥
अब चेले को समझ सुनाई । तुमहूँ समझि लेव यहि भाई ॥
यह संसार पहाड़ चौफेरा । जरे अगिन जिव चहुँ दिसि घेरा ॥
गृह भवकूप पड़े घबराई । काल सरप मुख खाने चाही ॥
दूबि उमिर भुगते दिन राती । निस दिन चूहे कतरि यहि भाँती ॥
माखी[2] महू[3] फोड़ करि खावे । सो सब जानो कुटँब कहावे ॥
सहद बूँद बिष रस की मीठी । इतना सुखी यह और न डीठी ॥
यहि चेला समझो मन माहीं । भव रस सुख दुख भुगते भाई ॥

॥ दोहा ॥

चेले का मन भ्रमित है, सुनि फकीर की बात ।
कछु जादू दिखलाय के, फेरि करै उतपात ॥

॥ चौपाई ॥

चेला आय गुरू से कहिया । जादू खेल फकीर दिखइया ॥
यहि गुरु के मन माहिं समानी । दोनों की अक्किल भरमानी ॥

---

(१) संग या साथ में ? (२) मक्खी । (३) शहद ।

मसलत[1] करि रातै उठि भागे । यह फकीर के मुँह नहिं लागे ॥
बड़े फजिर भिसारे भाई । गये रमते कहुँ खोज न पाई ॥
तुलसी कहे साँचि नहि आई । यह हिरदे मन भरमे भाई ॥
कोई दिन संग साँचि नहिं आवे । कहो दो दिन में कहा समावे ॥
भरम रहे जुग जुग के माहीं । तिनको साँचि कौन बिधि आई ॥
कर्मट[2] करि सब जन्म बिताया । इष्ट करा जड़ सँग लौ लाया ॥

॥ दोहा ॥

सो सुधरें नहिं जन्म लौं, धारें जन्म अनेक ।
भेष जतन करि के मरे, टारी टरी न टेक ॥

॥ चौपाई ॥

इक हिरदे संदेह उठाई । भर्म भया मोरे मन माहीं ॥
आगे जो संबाद सुनाये । वा में बेद पुरान उठाये ॥
ह्याँ तुम थापे बेद पुराना । साखि वही की भाखि बखाना ॥

(तुलसीदास बाच)

हे हिरदे तैं समझ न लाई । या का भेद कहूँ अरथाई ॥
बंधन बेद जक्त को कीन्हा । भव भुगते जिव जन्म अधीना ॥
जीव मुक्ति नहिं राह बताये । तीरथ बरत इष्ट उरझाये ॥
यहि कारन से खंडन कीन्हा । हिरदे हिरदे[3] बूझ यकीना ॥
बेद पुरान साख ह्याँ दीन्ही । याका भेद लखो चित चीन्ही ॥

॥ सोरठा ॥

संत साखि सतगुरु कहें, बेद कहे यहि भाख ।
साखि देइ सतगुरु सही, यहि मुकाम पर थाप ॥

॥ चौपाई ॥

सतगुरु की जहँ साखि सुनाई । जहँ बेदन को थापे भाई ॥
जग बंधन भवसागर डारा । जहँ बेदन को काढ़ि निकारा ॥

---

(१) सलाह । (२) कर्म । (३) मन में ।

यह बैठी हिरदे मन माहीं। नहिं कहुँ और रीति समझाई ॥
हिरदे कहे समझि मन माहीं। सो तो समझि समझ में आई ॥
एक अचंभा अचरज माहीं। सो पूछों कहो भाखि सुनाई ॥
तीनों ऐनक आँखि चढ़ाई। सिध गुरु चेले तीनों लगाई ॥
तीन भाव तीनों ने देखा। यह अचरज मन भया बिबेका ॥
ऐनक में सिध बगिया देखी। गुरु ऐनक नर पसू बिबेकी ॥
चेले को भवकूप दिखाना। तीनों कहें तीर सरधाना[1] ॥

॥ दोहा ॥

यह मोको कारन कहो, तीनों तीन बखान।
ऐनक में इक रस चही, यह कहो भेद बयान ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ चौपाई ॥

सुनु हिरदे यह बरनि सुनाऊँ। यह निर्बार तोहि समझाऊँ ॥
ऐनक देने की बिधि भाई। यामें करो समझ चित लाई ॥
जो सिध ऐनक आँखि लगाई। बाट चले छूटन नहिं पाई ॥
हर दम ऐनक छुटी न राही। यहि बिधि बाग दिखाना भाई ॥
गुरू ज्ञान के मान समाने। उनको नर पसुवत दरसाने ॥
रमत रहे अज्ञानी चेला। यह भवकूप लखा उन खेला ॥
यों तीनों के तीन बिचारा। यामें समझि लेव निर्बारा ॥

(हिरदे बाच)

को गुरु ज्ञान अज्ञानी चेला। कहो स्वामी यह समझ दुहेला[2] ॥

(तुलसीदास बाच)

॥ दोहा ॥

गुरू ज्ञान को समझि ले, चेला जग अज्ञान।
यह दोनों यहि बिधि कहें, लीजे परखि पिछान ॥

---

(१) भाव। (२) कठिन।

॥ चौपाई ॥

यहि बिधि कहे गुरू अरु चेला । नहिं परखे वह आदि अकेला ॥

(हिरदे बाच)

स्वामी कही सकल निर्बारी । संसय मोरी दूर बिडारी ॥
आदि अंत सुनि के भ्रम भागा । बरनि कही रहि एक न जागा ॥
मैं स्वामी चरनन बलिहारी । निरनय छाने भरम निकारी ॥
बड़े भाग अंकुर के मोरा । चरन चीन्ह प्रभु सरन बहोरा ॥
मैं अति कुटिल अधम अन्याई । तुम्हरे दरस परस को पाई ॥
संत दरस अघ पाप नसावें । अस अस कहें सभी मिलि गावें ॥
आदि अंत भाखा बरतंता । पावे कहा बिना को संता ॥

॥ सोरठा ॥

आदि अंत की बात, पूछी सो बरनन करी ।
भिन भिन कह्यो लखाब, स्वामी को कहे भेद यह ॥

॥ छन्द ॥

हिरदे कहे परनाम करि, इतनी कहन तुमने कही ।
मतिहीन मैं आधीन होय, कहुँ कोउ मरक[1] काढ़ी नहीं ॥
कोइ परखि चीन्ह प्रबीन जन, जिन पकड़ करि गाढ़ी गही ।
जग भेष टेक टेकाव जड़, मन मूढ़ नहिं कीन्ही सही ॥
यह अगम छान बखान बरनन, कहूँ नहिं ऐसी भई ।
तुमने कही सब भाँति भिन भिन, कोइ नहीं बाकी रही ॥
हिये में हरखि कोइ परखि पुर, धुर धाम धरि मन में लई ।
सतगुरु कृपा निज नाम नौका, निधि[2] निरखि मानो मही ॥
यह संत की बेअंत बोली, बिमल होइ बूझा चही ।
जग कर्मकांड उफान[3] उर धरि, धरम बस बाँधे दई[4] ॥
सतसंग के रँग रमक रस अस, बिमल मग बाचे सही ।
हिरदे कहे अनरूप आतम, अंग के अंदर मही[5] ॥

(१) मड़क की बात, नुकता । (२) खजाना । (३) उबाल यानी मैल । (४) कर्म । (५) मथा ।

(तुलसीदास बाच)

॥ दोहा ॥

तुलसी हिये हुलसी लखो, हिरदे हरख बयान ।
जानि जन्म नर तन यही, कही सब संत बखान ॥
नर तन में निरनै लखे, रखे सुरति समझाय ।
चाह रखे नहिं अंत की, सतगुरु सब्द समाय ॥
नर तन दुरलभ ना मिले, खिले कँवल रस माहिं ।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय ॥
रतन जतन सागर मही[१], कही जो निरनै छान ।
ब्यान बरन बिख्यान सब, बूझै बचन प्रमान ॥
हिरदे से तुलसी कहे, रहे अगम के पार ।
जो निरधार संतन कही, सो सतगुरु पद सार ॥

॥ इति ॥



(१) मथा ।